ISSN: 2583-391X

सोच भारत
की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

वर्ष 5, अंक 1-4 (संयुक्तांक), वि. सं. 2080-81
जनवरी - दिसंबर, 2024, (युगाब्द – 5125-26)

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

परामर्श

श्री अजेय कुमार, स्वतंत्र चिन्तक, दिल्ली
प्रो. योगेश सिंह, कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. एस. पी. बंसल, कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
प्रो. बृजेश कुमार पाण्डेय, रेक्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. सुषमा यादव, प्रति कुलपति, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़
प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा, पूर्व कुलपति, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा
प्रो. रंजना अग्रवाल, निदेशक, सीएसआईआर-राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

प्रमुख प्रबंधक

श्री विनोद शर्मा 'विवेक', प्रमुख, इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली

संपादक

प्रो. राजेंद्र कुमार पाण्डेय, आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

संपादक समिति

प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, आचार्य, भौतिकी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. सुनील कुमार कश्यप, आचार्य, वाणिज्य विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. राम निवास सिंह, प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, दिल्ली
डॉ. सोनिया, सहायक आचार्य, संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, दिल्ली
डॉ. विकास शर्मा, सहायक आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत और प्राच्यभाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री दीपक सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मीडिया आई. टी. एवं प्रचार-प्रसार

डॉ. मनीष कुमार सिंह, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुख़र्जी महाविद्यालय, दिल्ली
डॉ. दीपक मित्तल, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय, दिल्ली
श्री मनोज कुमार, सहायक आचार्य, यांत्रिकी विभाग, भास्कराचार्य महाविद्यालय, दिल्ली

कार्यालय

1/7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल,
चाणक्य प्लेस, C-1, जनक पुरी,
नयी दिल्ली - 110059
ईमेल: ipss.ipak@gmail.com
सचल दूरभाष: 981149924, 9868084938

संपादकीय

As India strides confidently towards the ambitious vision of *Viksit Bharat* (a fully developed, self-reliant, and globally respected nation), it becomes imperative to root this aspiration in the profundity of its own civilizational wisdom. The edifice of *Viksit Bharat* cannot rest upon the scaffolding of borrowed ideologies or Western paradigms alone. Rather, it must emerge organically from the deep reservoirs of India's literary, philosophical, and cultural heritage. True development is not merely the accumulation of material capital but the evolution of a society in harmony with its spiritual, ethical, and intellectual traditions. To overlook these dimensions is to construct a future severed from its historical and moral moorings. In this context, Indian literature, with its rich tapestry of values, metaphors, and ideological reflections, serves as both a mirror to our past and a compass for the future.

This issue of *Indraprastha Shodh Sandarsh* is a scholarly homage to this very ideal. It curates a spectrum of contributions that interrogate, interpret, and illuminate the varied contours of India's literary and ideological inheritance in the light of national resurgence. Opening the volume, Prof. Pawan Kumar Sharma's seminal article *"1857 की क्रांति और भारतीय साहित्य"* delves into the revolutionary fervour enshrined in literary expressions surrounding the First War of Independence, highlighting literature's potent role as a vehicle of resistance and national consciousness. Abhay Kumar Shukla's incisive study *"स्व से स्वराज और आत्मनिर्भर भारत: नाना जी देशमुख के विशेष सन्दर्भ में"* reflects upon the visionary framework offered by Nanaji Deshmukh.

Dr. Pratap Nirbhay Singh's erudite exposition *"शिक्षा और संस्कृति का संगम: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020"* critically examines the convergence of tradition and innovation within the New Education Policy, positing it as a transformative charter that harmonizes India's cultural roots with global educational aspirations. Complementing this is Dr. Shashi Sharma's reflective piece *"वाल्मीकि रामायण में वर्णित राष्ट्रीय भावना,"* which elucidates the

embedded strands of nationalism in India's culture. Dr. Nidhi's paper "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आलोक में ऋषि दयानन्द की वेदार्थप्रक्रिया" explores Rishi Dayanand's interpretation of the Vedas and highlights its importance in reclaiming knowledge rooted in Indian tradition.

The **अंतर्दृष्टि** segment furthers this discourse. Simran's analytical exploration *"प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर,"* uncovers the subaltern expressions of patriotism within censored literary texts, attesting to the indomitable spirit of dissent. Ms. Priya Sharma's *"Management Insights from the Bhagavad Gita"* seamlessly integrates ancient Indian wisdom with contemporary organizational paradigms, exemplifying the Bhagavad Gita's enduring relevance. Anamika Singh's contribution *"भारत का वैज्ञानिक योगदान: अष्टाङ्ग आयुर्वेद"* revisits India's profound contributions to medical science, underscoring Ayurveda's holistic philosophy as an alternative to reductionist biomedical models. Shivam Varshney's *पुस्तक समीक्षा* on *"भारत का संविधान: अनकही कहानी"* by Ram Bahadur Rai offers a nuanced critique of the constitutional journey, unearthing overlooked dimensions in India's democratic evolution.

Collectively, this issue of *Indraprastha Shodh Sandarsh* is more than an academic compilation, it is an intellectual invocation to revisit, reaffirm, and reimagine *Viksit Bharat* through the lens of our own civilizational genius. As we navigate the complexities of modernity, let us not forget that enduring progress emanates from cultural authenticity. In celebrating our intellectual inheritance, we pave the way for a future that is not just developed but enlightened.

Editor

अनुक्रमाणिका

पृष्ठ

संपादकीय i-ii

शोध-पत्र

- **1857 की क्रांति और भारतीय साहित्य**

  प्रो. पवन कुमार शर्मा 2-12

- **स्व से स्वराज और आत्मनिर्भर भारत: नाना जी देशमुख के विशेष संदर्भ में**

  अभय कुमार शुक्ल 13-25

- **शिक्षा और संस्कृति का संगम: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020**

  डॉ. प्रताप निर्भय सिंह 26-33

- **वाल्मीकि रामायण में वर्णित राष्ट्रीय भावना**

  डॉ. शशि शर्मा 34-41

- **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आलोक में ऋषि दयानन्द की वेदार्थप्रक्रिया**

  डॉ. निधि 42-49

अंतर्दृष्टि

- **प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर**

  सिमरन 51-58

- **Management Insights from the Bhagavad Gita**

  Ms. Priya Sharma 59-66

- **भारत का योगदान वैज्ञानिक योगदान: अष्टाङ्ग आयुर्वेद**

  अनामिका सिंह 67-72

पुस्तक समीक्षा

- **भारत का संविधान : अनकही कहानी, रामबहादुर राय**

  शिवम् वार्ष्णेय 74-76

विविधा

- **भुला नहीं सकेंगे हम**

  चित्रा देवी 78-79
- **माँ**

  काव्या 80-81

शोध-पत्र

■■■

1857 की क्रांति और भारतीय साहित्य

प्रो. पवन कुमार शर्मा
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

1857 की क्रांति की पहल का सम्बंध 1772 के सन्यासी आंदोलन तक जाता है, क्योंकि यह आंदोलन अंग्रेजों की कुत्सित नीतियों के (1768 में बंगाल में भी अकाल पड़ा था, इसके बावजूद भी अंग्रेजों ने बहुत ही निर्ममता से न केवल मालगुजारी वसूली बल्कि यह अन्य वर्षों की मालगुजारी से अधिक भी थी) क्रियान्वयन के तत्काल बाद प्रारम्भ हो गया था और पूरे 10 वर्षों (1772-1782) तक चला था, इस आन्दोलन ने अंग्रेजों को नाकों चने चबवा दिए थे। तत्कालीन-गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स को सन्यासियों को बंगाल की सीमा से बाहर करने में अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ी थी तब कहीं जाकर यह आंदोलन शांत हुआ था।[1] 1857 के आंदोलन या क्रांति की शुरुआत भी दशनामी सन्यासियों की प्रेरणा से ही हुई थी और यह सूचना तत्कालीन ग्वालियर के महाराजा सिंधिया की दादी बैजा बाई ने महाकाल की नगरी उज्जैन में नाना साहब को दी थी कि भारत के स्वातंत्र्य के लिए 1856 में ऋषिकेश में सन्यासियों के द्वारा कुछ रणनीति बनाई जा रही है और तुम उसमें सहयोग करो।[2] बाद में, नाना साहब अपने सहयोगी अजीमुल्ला खान के साथ इन सन्यासियों के सम्मेलन में उनसे जाकर मिले भी थे और फिर सारी कार्यवाही सन्यासियों की इच्छा अनुसार ही संचालित हुई थी।[3] इनमें से ही एक सन्यासी, जिनका नाम स्वामी विरजानन्द जी था जिन्होंने, बाद में मूलशंकर को दीक्षित करके स्वामी दयानंद सरस्वती बनाया, भी थे। जिन्होंने लंबे समय तक अलवर के महाराजा विनय सिंह को न केवल संस्कृत सिखाई थी अपितु उनके माध्यम से राजस्थान के अन्य राज घरानों से सम्बन्ध भी स्थापित किया था[4] और इन रियासतों का उपयोग स्वामीजी के द्वारा अनेक प्रकार से 1857 की क्रांति और उसके बाद में भी किया गया था। वस्तुतः1857 की क्रांति सन्यासियों के मार्गदर्शन में लड़ा जाने वाला एक लंबा युद्ध था जोकि भारत की संस्कृति और आर्थिक अवस्था को, या यों कहें तो अधिक उचित होगा कि यह स्वधर्म, स्वदेशी और स्वशासन को दृष्टिगत रखकर लड़ा गया था।

इन दोनों मुद्दों को ध्यान में रखकर ही इस क्रांति का प्रतीक चिह्न रोटी और कमल का फूल थे। इनमें कमल का फूल सांस्कृतिक सुशासन और रोटी आर्थिक दशा से सम्बंधित थी। यों तो यह क्रांति समय पूर्व (10मई) प्रारम्भ हो जाने के कारण अपने अभीष्ट को प्राप्त न कर सकी थी किन्तु इस क्रांति ने समाज में नव चैतन्य का संचार कर दिया था। जिसके कारण, समाज के प्रत्येक वर्ग में अंग्रेजों के प्रति वितृष्णा का भाव जागृत हो गया था और उसी के वशीभूत सभी भाषाओं में अनेक प्रकार से अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना से सम्बंधित साहित्य सृजित होने लगा था। यह साहित्य तो अंग्रेजों के व्यापारी से शासक बनने के बाद से ही स्थान-स्थान पर रचा जाने लगा था और इस साहित्य ने स्थानीय स्तर पर समाज और शासकों को उद्वेलित भी किया था। यों तो ,यह साहित्य स्थानीय स्तर के स्वतंत्र कवियों द्वारा रचा गया था, किंतु इसके केंद्र में राष्ट्रीय चेतना थी, जोकि उन इतिहासकारों के लिए एक सबक

है जो यह कहते नहीं थकते की भारत में राष्ट्रीय चेतना का ज्वार तो कॉंग्रेस के अभ्युदय के बाद ही आया। |आश्चर्य! उनमें से एक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी स्वयं भी थे।[5] इस आलेख का मुख्य हेतु उसी साहित्य को अध्येताओं के मध्य प्रस्तुत करना है जिससे वे साहित्य की भूमिका से परिचित हो सकें। साहित्यकारों की यह भूमिका 19 वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों से ही प्रारंभ हो जाती है और फिर इसका सतत् प्रवाह स्वातन्त्र्य प्राप्ति तक चलता रहता है।

साहित्य के अनुशीलन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि न तो भारतीयों ने अंग्रेजों की पराधीनता स्वीकार की थी और न ही भारत पूर्ण रूप से अंग्रेजों के आधिपत्य में चला गया था। उपरिलिखित 1772 का सन्यासी आंदोलन और 1853 में ब्रिटिश पार्लियामेंटरी कमीशन के सम्मुख चार्ल्स ट्रेवलीन का वक्तव्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि 1757 के बाद से ही भारतीय जनमानस अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिए सक्रिय हो गया था। तभी तो वह कमीशन के सम्मुख दिए गए अपने वक्तव्य में कहता है कि मैंने 12 वर्ष भारत में व्यतीत किए हैं, 6 वर्ष कलकत्ता में और 6 वर्ष दिल्ली में किन्तु कलकत्ता के लोग आधुनिक शिक्षा के सम्पर्क में आने के कारण क्रांति के स्थान पर प्रतिवेदन आदि से अपनी बात कहते हैं; जबकि, दिल्ली के लोग बात-बात पर लड़ाई झगड़े और क्रांति की बात करते हैं। इसलिए यथा शीघ्र ब्रिटिश एजुकेशन लागू करनी चाहिये।[6] इसके अतिरिक्त कुछ साहित्य जोकि लिखित और मौखिक परम्परा में विद्यमान था। यथा : 1803 में सुप्रसिद्ध कवि पद्माकर का लिखा गया कवित्त जो उन्होंने ग्वालियर के महाराजा दौलतराजे सिंधिया के सम्मुख अंग्रेजों के विरुद्ध चेतावनी स्वरूप पढ़ा था।

बांका नृप दौलत अली जा महाराज कबौ

साजि दल पकरि फिरंगिन दबावेगों।

दिल्ली दहपट्टी, पटना हु को झपट्ट करि,

कबहुँक लत्ता कलकत्ता के उड़ावैगो।

मीनागढ़ बम्बई सुमंद मंदराज बंग,

बंदर को बंद करि बंदर बसावैगौ।

कहै पदमाकर कसकि कासमीर हू को,

पिंजर सों घेरि को कलिंजर छुडावैगौ।[7]

इस कवित्त में अंग्रेजों के विस्तार की बात कह कर सिंधिया के पौरुष को ललकारा जा रहा है। एक कवि इसके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इसके बाद ही 1803-05 में मराठा और अंग्रेजों का युद्ध हुआ था। इस प्रकार से समाज के मानस को समझ सकते हैं कि उसने अंग्रेजो के आधिपत्य को अन्तस् से स्वीकार नहीं किया था। 1803-05 के युद्ध में कुछ विसंगतियों के चलते अंग्रेजों को भारत से खदेड़ा न जा सका। मराठा राजा होल्कर भरतपुर के राजा रणजीत सिंह के यहां रहे और अंग्रेजों से संधि के बाद भी भरतपुर नरेश ने होल्कर को अंग्रेजों को देने से स्पष्टतः मना कर दिया था।[8] क्योंकि वह राष्ट्रीय चेतना के ज्वार से परिचित थे। होल्कर को प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने भरतपुर पर भी हमला किया। और कवि ने भरतपुर की महिमा में तुरंत कवित्त रचा जोकि इस प्रकार है-

आछो गोरा हट जा।

राज भरतपुर को रै गोरा हट जा।

भरतपुर गढ़ बाँको, किलो रै बाँको

गोरा हट जा।[9]

यहां यह बात ध्यान देने की है कि भरतपुर, अलवर,धौलपुर आदि राजस्थान के क्षेत्रों में ब्रजभाषा का ही प्रभाव है और बोली भी वही जाती है ,फिर भी कवि ,कवित्त राजस्थानी में लिख और बांच रहा है। इससे उसकी कूटनीतिक चेतना का भी भान होता है। भरतपुर पर आक्रमण के लिए अंग्रेजों को ब्रज क्षेत्र पार करना ही पड़ा होगा, तब भरतपुर तक पहुंचे होंगे। अब ब्रज भाषा में काव्य रचकर कुछ नहीं हो सकता था। अब तो विकल्प राजस्थानी चेतना को जागृत करके राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करनी थी, जो कवि ने की भी। इन जातीय चेतना की कविताओं में, जिनमें राष्ट्रीय भाव कूट-कूट कर भरा था, को सहज ही समझा जा सकता है। उपनिवेशी इतिहासकारों ने वर्षो-वर्ष भारत के साथ विश्वासघाती भूमिका निभाई है, क्योंकि, उन्होंने संख्या में कम अंग्रेजों को भी भारत पर शासन करते और युद्ध जीतते दिखा कर उनको वीर और हमारे रणबांकुरों को कमतर आंका है जिससे भारत की युवा शक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी आत्मविश्वास विहीन बनती रही है। जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत रही है। नीचे की पंक्तियों से इसे सहज ही समझ सकते हैं –

आठ फिरंगी नौ गोरा,

लड़ै जाट के दो छोरा।[10]

तर्कशास्त्रियों के लिए यह अतिश्योक्ति हो सकती है किंतु यह भारतीय जनमानस की अभिव्यक्ति है कि वह हारने को और उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है तथा पूर्ण राष्ट्रीय चेतना के भाव से उसे जनमानस में फैलाने को क्रियाशील है। ऊपर के दोनों सन्दर्भों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अग्रेंजों के सम्मुख न तो ग्वालियर का राजा कमतर है और न ही भरतपुर का। कवि उनके सामर्थ्य से परिचित हैं तभी तो उनके पुरुषार्थ को ललकारते हैं और उसी पुरुषार्थ के भय का उल्लेख कार्ल मार्क्स ने अपने भारत सम्बन्धी निबन्धों में किया है।

राजस्थान के एक बहुत ही लोकप्रिय कवि 19 वीं सदी में हुए, उनका नाम था बाँकीदास, इनका उल्लेख डॉ रामविलास शर्मा जी ने अपने लेखन में बहुत ही प्रमुखता से किया है। बाँकीदास जी बहुत ही चिंतनशील और गुणी व्यक्तित्व थे, भारत के इतिहास, भूगोल और एकात्मता का भी इन्हें खूब ध्यान था, तभी तो राजस्थानी में काव्य रचने के बाद श्रीलंका तक भारत का विस्तार कर उसे उल्लिखित कर रहे हैं। ये रचनाएं उन बुद्धिजीवियों के लिए एक आईना हैं जो यह कहते नहीं थकते कि 1857 से अंग्रेज तो नहीं भागे किन्तु उन्होंने भारत को एक देश के रूप में अवश्य संगठित होने को प्रेरित कर दिया। बाँकीदास जी का निधन 1833 में हो गया था और जिस कविता में ये पूरे भरतखण्ड का वर्णन कर रहे हैं वह निश्चित ही उससे पूर्व की है। वे लिखते हैं–

उतन विलायत किलकता कानपुर आविया,

ममोई लंक मदरास मेला।

यलम धुर वहन अंग्रेज वाटन थला,

भरतपुर ऊपर हुवा मेला।

सैन रिजमेंट असंख पलटनां तने संग

भड तिलंग बंग किलंग तना भिलिया

अभंग जंग भरतखण्ड पारका ऊसर ऊंवे

मारकआ वजन्द्र रै दुरंग मिलिया।[11]

कवि लिखता है कि विलायत से अंग्रेज अपने इल्म (चतुराई) के बल पर कलकत्ता, कानपुर,मुंबई,मद्रास लंका होते हुए अब भरतपुर पर चढ़ आया है। और उसने जो सेना जोड़ी है वह इसी देश के प्रदेशों के लोगों की है तथा ये जो प्रदेश हैं वे सब भरतखण्ड नामक देश में है। इस कवित्त से राष्ट्रीय चेतना का ज्वार स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अंग्रेज न तो सर्वत्र विजयी हो रहे थे और न ही पूरे भारत को उन्होंने जीत लिया था। क्योंकि आगे जो पंक्तियां कवि लिख रहा है वह अंग्रेजों की कमतरी की पुष्टि करती हैं।वे लिखते हैं -

थया बलहीन लश्कर फ़िरंगथनां

चीन इनांन् रा यलम चलिया।[12]

भारत आकर फिरंगियों का लश्कर यानि सेना बलहीन हो गई और उसने चीन और यूनान से जो चतुराई सीखी थी वह भारत आकर बेकार हो गई।

इतना ही नहीं बाँकीदास जी राजपूतों के अंग्रेजों से लड़े बिना अंग्रेजों को धरती सौंपने के भी विरुद्ध थे। तभी तो वे अपनी कविता के माध्यम से रजवाड़ों को नाम ले ले कर ललकारते हैं।

आयो इंग्रेज मुलक रै ऊपर, आहस लीधा खींची उरा।

धनिया मरै न दीधी धरती, धनिया ऊभो गई धरा।

पुर जोधान, उदैपुर,जैपुर, यह थारा खूटा परियां।

आंके गई आवसी आंके ,बांके आसल किया बखान।[13]

ISSN: 2583-391X

कवि अभी राजाओं के व्यवहार से हताश है किंतु भविष्य को चेता रहा है और उसे विश्वास है कि राष्ट्र की चेतन शक्ति स्वयं अपना मार्ग तलाश लेगी। इस प्रकार 1757 के बाद 1857 तक राष्ट्र की चेतन शक्ति ही किसी न किसी रूप में न केवल राष्ट्र को जीवित रखे रही बल्कि उसे स्वतंत्रता के लिए प्रेरित भी करती रही। किन्तु उपनिवेशी इतिहासकारों को राष्ट्र की यह चेतन शक्ति और उसकी एकात्मता नहीं दिखती, उन्हें दिखता है तो मात्र द्वंद। वे ये भूल जाते हैं कि द्वंद कृत्रिम है और चेतनता सनातन। द्वंद को गतिशील बनाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है जबकि सनातन जैविक होने के कारण स्वयं विकसित या अद्यतन होती है। अस्तु।

1857 से पूर्व 1834 में शेखावाटी के डूंगरसिंह के नेतृत्व में सैनिकों ने विद्रोह किया था और अंग्रेजों ने उसे पकड़ कर आगरा के किले में कैद कर लिया था, और जिसे जवाहर सिंह के नेतृत्व में सैनिकों ने उसे छुड़ा लिया था तथा मार्ग में पड़ने वाली नसीराबाद की छावनी पर आक्रमण करके खजाने को अपने अधिकार में ले लिया था।[14] इस प्रकार से राजस्थान में चारों ओर अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण बन चुका था। बाद में, स्वामी विरजानन्द जी ने भरतपुर को अपना केंद्र बनाकर यहां के रजवाड़ों और जनता को उद्वेलित कर दिया था। राजस्थान में होने वाली घटनाएं 1857 की क्रांति की पूर्व पीठिका थीं। और सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात है भारत की संस्कृति और एकात्मता का उल्लेख। कवि राजस्थान के लोगों को संगठित करने के लिए काव्य रच रहा है लेकिन स्वातंत्र्य भारत या हिन्द का चाहता है क्योंकि वह जानता है कि अंग्रेज विधर्मी हैं यदि उसका शासन भारत के किसी भी राज्य पर है तो वह भारत के स्वातंत्र्य के लिए खतरा है। सबसे रोचक बात यह है कि ये कवि चारण परम्परा के कवि नहीं थे, ये स्वतंत्र काव्यों के रचयिता थे जिनके लिए राष्ट्र सर्वोपरि था। यह अलग विषय है कि इनके काव्य से प्रभावित होकर राजे-रजवाडे इन्हें उपाधियों और पुरूस्कारों से विभूषित करते रहते थे।

1857 की क्रांति के पूर्व भी भारत में अंग्रेजों को देश से निकालने के प्रयत्न होते रहे थे। 1772 से प्रारम्भ होकर 1782 तक का बंगाल का सन्यासी आंदोलन, 1803-05 का अंग्रेज और मराठों का युद्ध, इस युद्ध के पहले ही 1803 में कवि पद्माकर ने सिंधिया के दरबार में आकर ही उनके पुरुषार्थ को ललकारा था। फिर इसके बाद राजस्थान की पुरुषार्थी परम्परा प्रारम्भ हुई जिसने अंग्रेजों को नाकों चने चबवाए। ऐसी ही वीरतापूर्ण बातों का उल्लेख ब्रिटिश इतिहासकार विलबरफोर्स बेल अपनी सुप्रसिद्ध कृति *हिस्ट्री ऑफ काठियावाड़* में करते हैं कि किस प्रकार से बघेरो ने अंग्रेजों को अपनी वीरता से दिन में ही तारे दिखा दिए थे किंतु अपने किले पर अंग्रेजों को अधिकार नहीं दिया था। बघेरो ने अंग्रेजों से1802 से लेकर 1865 तक कई बार युद्ध किया था किंतु अंग्रेज इन पर पार न पा सके थे। इनकी वीरता के गीत वहां के लोक मानस में गहरे तक रच बस गए थे। इन गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद किनकेड नामक अंग्रेज ने किया था जो कि हिंदी में कुछ यूं है-

मराठा हमला कर सकता है उठते ज्वार की तरह,

डरता नहीं है,बहुत लड़ाइयां लड़ चुका है।

घारी दूर है पर घारी में वे उससे थर्राते हैं,

और सुदूर कोडिनार में वे उसके नाम से कांपते हैं।

धरती का स्वामी भले सिंहासन पर बैठा हो,

पर वह उसका सारा कोष , सारे नगर अपने मानकर हड़प लेता है।

और उनकी अकड़ ढीली पड़ जाती है,मूंछे नीची हो जाती हैं,

जब वे मानिक का शानदार झंडा लहराते देखते हैं।

हर काठी आराम से दावत के इंतज़ार में बैठा है।

आते हैं मुलु। आराम-आराम से उनकी दावत उड़ा जाते हैं।

वे बदला लेने के मंसूबे गांठते हैं। बहादुर मुलु को भला इसकी क्या परवाह है।

नाम सुनते हैं तो राजा उनके आगे नाक रगड़ते हैं।

राजपूत और काठी दोनों को ही उनसे डर है।

और गोरा आदमी उनका नाम सुन कर चट्ट सफेद पड़ जाता है।[15]

इस प्रकार बघेरो ने अंग्रेजों को लंबे समय तक अपने युद्धों में घेरे रखा। 1857 के बाद भी ये युद्ध चले हैं और स्वामी दयानंद सरस्वती की भी भूमिका इनको प्रेरित करने में रही है।[16] इन सबके भी प्रमाण बहुतायत में मिलते हैं और इन प्रमाणों के ही आधार पर भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन के मूल्यांकन की आवश्यकता है; कि, कौन सा विचार, आंदोलन या कार्यक्रम कब सक्रिय हुआ? प्रायः यह बताया जाता है कि भारत में राष्ट्रीयता की अलख जगाने और राजनीतिक चेतना जागृत करने में कॉंग्रेस की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि कॉंग्रेस की स्थापना 1885 में न हुई होती तो भारत वर्षों वर्ष स्वातंत्र्य का मुंह न देख पाता। अतएव हमें तो अंग्रेजों के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। जो ऐसा कहते हैं वे 1757 और 1885 के मध्य मातृ भाषाओं में सृजित साहित्य को विस्तार से पढ़ें तो उन्हें यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में स्वातंत्र्य का ज्वार कॉंग्रेस की स्थापना से कहीं पहले से ही बह रहा था बल्कि कॉंग्रेस ने तो स्थापित होकर उसकी गति को और धीमा ही किया। इसलिए स्वातंत्र्य प्राप्ति में विलंब हुआ। भारतीय चेतना की समझ को इस बात से आसानी से समझा जा सकता है कि वे न केवल अंग्रेजों को देश से बाहर करना चाहते थे वरन वे उनके द्वारा जो देशी उद्योगों को उजाड़ दिया गया था की पुनः स्थापना भी चाहते थे। क्योंकि, बिना आर्थिक स्वावलम्बन के भारत अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त न कर सकता था और वह थी स्वदेशी उत्पादन प्रणाली। इसके लिए भी नानाविध उपक्रम किए जाते थे। इनमें से कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं में छपे थे और कुछ ऐसे ही हस्त पत्रक के रूप में। इनमें से एक हस्त पत्रक 1857 में आजमगढ़ के क्रांतिकारियों ने छापा था जिसमें लिखा था "आप लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि दगाबाज अंग्रेजों ने नील, अफीम,कपड़े वगैरह जैसी मुनाफा देनेवाली चीजों का बाजार अपने हाथ में कर रखा है और कम मुनाफे का व्यापार उन्होंने आपके लिए छोड़ दिया है। और आपको जब उनकी अदालतों में जाना पड़ता है तब स्टाम्प पेपर और कोर्ट फीस के लिए आपको भारी रकमें चुकानी होती हैं। इसके अलावा वे पोस्टेज और स्कूल फंड के रूप में जनता से पैसा वसूल करते हैं और जमींदारों की तरह उनकी अदालतों में बुलाए जाने पर नीचा

देखना पड़ता है, और किसी भी ऐरे-गैरे के कहने पर आपको जेल भी हो जाती है या जुर्माना देना पड़ता है।"[17] यह पत्रक आगे फिर सावधान करता हुआ लिखता है कि "यूरोपियन लोग हर तरह की चीजें यूरोप से मंगाते हैं और इस तरह बहुत थोड़ा रोजगार आपके हाथ में रह जाता है।"[18] इस प्रकार से क्रांतिकारी धर्म,अर्थ आदि के आधार पर भी जनता को संगठित कर रहे थे और अंग्रेजों के विरुद्ध मजबूती से खड़े हुए थे। स्वदेशी की महत्ता 1905 -6 से पूर्व ही देश समाज पहचान चुका था यह कोई कॉंग्रेस के द्वारा प्रारम्भ किया हुआ आंदोलन मात्र नहीं था। इसी प्रकार का एक इश्तहार 1857 में दिल्ली में, जो सेनाएं सब ओर से आकर एकत्रित हुए थीं, जोकि लगभग 90 हजार से भी अधिक थीं, ने भी प्रकाशित करके वितरित किया था, जिसमें की भारत की दुर्दशा, जोकि अंग्रेजों ने की थी, के विषय में लिखा गया था। इसमें अंग्रेजों ने टैक्स में जो कई गुना वृद्धि की थी, चुंगी में जो वृद्धि की थी और उद्योग धंधों को उजाड़ कर भारत की अर्थ व्यवस्था को चौपट कर दिया था, के सम्बन्ध में विस्तार से उल्लेख किया गया था। तथा हिन्दू और मुस्लिमों के धर्म सम्बन्धी समस्याओं को भी गम्भीरता से सामने लाया गया था।[19] इस प्रकार से भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिकता को छिन्न-भिन्न करने वाले अंग्रेजों के कुत्सित प्रयासों से क्रांतिकारी न केवल परिचित थे बल्कि वे जन साधारण को भी परिचित करा रहे थे। इसके अतिरिक्त लोकगीतों की भूमिका भी स्वदेशी के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण रही है। इस प्रकार के लोकगीत 1857 से पहले भी और बाद में भी प्रचलन में रहे थे जोकि भारत की दुर्दशा से सम्बंधित देशी राजाओं और अंग्रेजों पर कटाक्ष करते हैं। यथा-

दुश्मन देसां लूट कर , ले ज्यावै परदेस।
राजन चूडल्या पहर ल्यो,धरो जनानो भेस।[20]

कवि वस्तुतः राजाओं के पुरुषत्व को ललकार रहा है और देश की आर्थिक लूट से व्यथित है। इसी बात को व्यंग्य रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कुछ यों कहा है :-

भीतर भीतर सब रस चूसै ।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै।।
जाहिर बातन में अति तेज ।
क्यों सखि सज्जन, नहिं अंग्रेज।।[21]

ये गीत उस समय लोक में प्रचलित थे और देश-दशा और अंग्रेजों की कुत्सित मानसिकता का परिचय देते थे। ये सब बातें अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण का निर्माण करती थीं । इन्हीं सब को रोकने के लिए बहुत युक्तिपूर्वक 1885 में कॉंग्रेस का अभ्युदय हुआ। इन लोकगीतों के महत्व को समझकर ही मई 1879 (अभी कॉंग्रेस नहीं बनी थी) की कविवचन सुधा भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी और उसमें लिखा कि "इसके हेतु मैने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गाँव-गाँव में साधारण लोगों में प्रचार की जाएं। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रसार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है की जितना शीघ्र ग्रामगीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर

प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।"[22] यहाँ पर यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र बात तो लोकगीतों की कर रहे हैं किंतु लक्ष्य पूरा भारतवर्ष है। तभी तो सार्वदेशिक प्रसार की बात कर रहे हैं। स्वातंत्र्य काल में और उससे पहले की साहित्यिक कृतियों में संपूर्ण भारत का ही उल्लेख सब स्थानों पर हुआ है। यहां पर भी यही हो रहा है। वे इसी विज्ञप्ति में आगे लिखते हैं कि "सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो ।"[23] और आगे वे सभी से इस राष्ट्रीय कार्य में संलग्न होने का आवाहन करते हुए लिखते हैं कि" उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करें।"[24] लोकगीतों के विषय के रूप में उन्होंने स्वदेश और स्वदेशी को केंद्र में रखा था। भारतेंदुजी में राष्ट्रभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। वे देशकाल परिस्थितियों से भली भांति परिचित थे और इसी भाव के वशीभूत होकर उन्होंने 'अंधेर नगरी-चौपट राजा', भारत दुर्दशा जैसी कालजयी रचना प्रस्तुत कीं, जो आज भी जन मानस के हृदय को उद्वेलित कर देती हैं। कविवचन सुधा में उन्होंने समय-समय पर अनेक लेख और विज्ञप्तियों का प्रकाशन कर जन मानस को स्वातंत्र्य और स्वदेशी के लिए संगठित किया। ऐसा ही एक लेख उन्होंने मार्च 1874 की कविवचन सुधा में लिखा कि "कपड़ा बनाने वाल, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं खेती करने वालों की यह दशा है किलँगोटी लगाकर हाथ में तूम्बा ले भीख मांगते हैं, और वे जो निरुधम हैं उनको तो अन्न की भ्रांति है।"[25] यह हाल अंग्रेजों ने उस भारत का पिछले लगभग सवा सौ वर्षों में कर दिया था जोकि अंग्रेजों के आने के पूर्व यानी 18 वीं सदी तक वैश्विक बाजार में 25 से 28 प्रतिशत भागीदार था।[26] कार्ल मार्क्स भारत के कौशल और कृषि को ही भारत की समृद्धि का आधार मानते थे[27] किंतु अंग्रेजों ने इंग्लैंड के विकास के लिए भारत को चौपट कर दिया। तत्कालीन समाज यह सब जानता समझता था और उसी की अभिव्यक्ति साहित्य और साहित्यकारों के द्वारा हो रही थी; जिसमें ये लोग समाज के धनिक वर्ग से आगे आकर उद्योगों के लगाने का आह्वान कर रहे थे । वस्तुतः ये यथार्थवादी लोग थे जो भलीभांति समझ रहे थे कि अब पहले की भांति हाथ के करघों से कपड़ा बुनकर विश्व बाजार पर आधिपत्य नहीं जमाया जा सकता जैसा कि अंग्रेजों के आने के पूर्व तक था। अब यदि अंग्रेजों को पीछे करना है तो उनके ही तौर तरीकों से लड़ना होगा । इसलिए वे 9 मार्च 1874 की कविवचन सुधा में लिखते हैं कि " इसलिए अब जो विद्वान और विचारी मनुष्य हों उनको उचित है कि अपने द्रव्य की वृद्धि के निमित्त जितने भाप के यंत्र मँगावें और यहां भी धातु आदि खान कई हैं उनका शोध करें ।"[28] इस शोध के माध्यम से आधुनिक उत्पादन इकाइयों की स्थापना का आह्वान वे कर रहे थे और इसके लिए वे सभी को प्रतिज्ञाबद्ध करते जाते थे। इसके लिए उन्होंने एक प्रतिज्ञापत्र 23 मार्च 1874 की कविवचन सुधा में छपवाया था कि" हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे"[29] आगे फिर वे 8 जून 1874 की कविवचन सुधा में देश के पुरुषार्थ को ललकारते हुए लिखते हैं कि ''भाइयों!, देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"[30] भारतेंदु हरिश्चंद्र साहित्यकार थे लेकिन परम्परा से यह ज्ञान था कि धन की आवक, उत्पादन और उसकी बिक्री से होती है किंतु अंग्रेज इसी को नष्ट करके इंग्लैंड में निर्मित समान से भारत के बाजारों को पाट रहे थे जिससे रोजगार कम हो रहा था और पूंजी का ह्रास हो रहा था। यह भारत और भारतीयों के हित में नहीं है इसलिए उन्होंने दो कार्यक्रम भारतीयों के सम्मुख रखे एक रचनात्मक यानि उद्योग लगाकर धन की जावक रोको, दूसरा आंदोलनात्मक अर्थात विदेशी उत्पादनों का बहिष्कार करो। इस प्रकार स्वदेश, स्वदेशी और स्वाभिमान सम्बन्धी भावना देश समाज में कोई कॉंग्रेस की देन नहीं थी- यह

पहले से चली आने वाली परंपरा थी जिसको कि उपनिवेशी इतिहासकारों ने 1885 से प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया और कॉंग्रेस से इतर भी अन्य वर्गों का योगदान देश के स्वातंत्र्य में था, को दृष्टिओझल कर दिया।

19 वीं सदी बहुत ही उथल-पुथल भरी थी क्योंकि उपनिवेशी समृद्धि से यूरोप में आर्थिक क्रांति अपने चरम पर थी और उसके चलते अनेकानेक विचार क्रांतियों ने भी जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया था। भारत में भी पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार नित नए सोपानों को पार कर रहा था और चरम पर था। भारतीय स्वातंत्र्य के यज्ञ में नाना प्रकार से सहभाग करने वाले नेता गण भी जहां पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर उसके सिद्धांतों को स्वीकार कर रहे थे वहीं दूसरी ओर साहित्य पर भी उसकी छाप को स्पष्टतः देखा जा सकता था। पाश्चात्य शिक्षा और भारतीय भावभूमि के वशीभूत अनेक साहित्यिक कृतियां रची जा रहीं थीं, उनमें से ही एक थी *आनन्द मठ*, जोकि बंकिमचन्द्र चटर्जी के द्वारा रची गई थी और स्वातंत्र्य समर का कालजयी गीत वन्देमातरम इसी की देन है। यों तो यह 1882 में लिखी गई थी और इसकी भाषा बांग्ला थी किन्तु इसका कथानक था 1772 का बंगाल का सन्यासी आंदोलन, जिसने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया था। इस उपन्यास ने पहली बार लौकिक रूप से इस भूमि के साथ माता-पुत्र के सम्बन्धों की स्थापना करके भारतमाता की स्तुति के माध्यम से इसकी समृद्धि का वर्णन वन्देमातरम गीत के माध्यम से किया था। पहले इस माता का शोषण मुस्लिम आक्रांताओं ने किया और बाद में अंग्रेजों ने। इस प्रकार से यह उपन्यास भी स्वातंत्र्य समर में प्रेरित करने वाले साहित्य में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।[31]

आनन्दमठ उपन्यास से ही प्रेरित एक और उपन्यास 1857 के समर को केंद्र में रखकर लिखा गया था। उसको जे० एफ० फॉनथोर्न नाम के व्यक्ति ने 1892 में *'मरियम : ए म्यूटिनी 1857'* के नाम से फ्रेंच में लिखा था जो बाद में अंग्रेजी में अनुवादित हुआ। यह उपन्यास भी 1857 के क्रान्ति में सन्यासियों के योगदान को रेखांकित करता है और इसके देश व्यापी स्वरूप को उजागर करता है। इस उपन्यास से सम्बंधित सामग्री के सूत्र मैसूर ज्यूडिशियल कमीशन तक जाते हैं और सन्यासियों की आनन्दमठ सरीखी चिंता को उजागर करते हैं। इस प्रकार से इसकी विषय वस्तु जो कि देशज है, किंतु भाषा अंग्रेजी होने के कारण यह बहुत अधिक चर्चित न हो सका तथा लेखक भी विदेशी होने के कारण भारत की भावभूमि के साथ स्वयं को सन्नद्ध करने में सफल न हो सका। किंतु इसके स्वातंत्रिक अवदान को कमतर नहीं किया जा सकता है।[32]

इतना ही नही उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र भी अपनी कालजयी रचनाओं (उपन्यास एवं कहानियों) के माध्यम से जहाँ एक ओर भारतीय स्वातन्त्रय के यज्ञ में अपने साहित्य के द्वारा आहुति दे रहे थे वहीं दूसरी ओर वे देश-काल परिस्थियों को दृष्टिगत रखकर उद्योगों की स्थापना और उनकी महत्ता को भी उजागर कर रहे थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वदेशी और स्वाभिमान को दृष्टिगत रखते हुए ही साहित्यकार होने के उपरांत भी सरल शब्दों में अर्थ की महत्ता को जनमानस को समझाने के लिए 1909 में संपत्ति-शास्त्र जैसी महान कृति का सृजन किया। दक्षिण भारत में भी नानाविध क्रिया कलापों में अपने साहित्य के माध्यम से सुब्रहमण्य भारती ने भी अपनी भूमिका सुनिश्चित की, जिससे वहाँ सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों ने गति पकड़ी।

अतएव भारतीय राष्ट्रीय साहित्य और स्थानीय साहित्य की भूमिका भारतीय स्वातन्त्र्य समर में किसी भी प्रकार से कमतर नहीं रही है। आवश्यकता है तो उसे उजागर करने की जिससे सर्व साधारण उससे परिचित हो सकें। स्थानीय साहित्य जोकि मातृ भाषाओं में रचा गया था ने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन की है किन्तु इस प्रकार के तथ्यों को उजागर करने में सामान्यता नानुंच की गई है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो देश के लम्बरदारों की हेटी हो जाती और भारतीय स्वातन्त्र्य समर का युद्ध सर्व साधारण के नाम हो जाता। समस्त संघर्ष तो कुछ बनाम सर्व साधारण का ही रहा।

सन्दर्भ -:

1. जे० एन० फरकुहर, द आर्गेनाईजेशन ऑफ द सन्यासीज ऑफ वेदांत, जर्नल ऑफ द रॉयल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,लंदन, जुलाई 1925, पृष्ठ 479-86 एवं एंटोनोवा , ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, (1949) बम्बई पृ०29
2. आनंद स्वरूप मिश्रा, नाना साहब पेशवा एंड द फाइट फ़ॉर फ्रीडम, (1961) इन्फॉर्मेशन डिपार्टमेंट, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृष्ठ 198
3. तदैव
4. सत्य केतु विद्यालंकार; आर्य समाज का इतिहास, खण्ड 1 (2014) आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली   पृ० 697-98
5. महात्मा गांधी, हिन्द स्वरूप, सर्व सेवा प्रकाशन संघ, वाराणसी, (2013) पृ० 23
6. सुन्दर लाल, भारत में अंग्रेजी राज खण्ड-3 (1938) इलहाबाद पृ० 1151
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, (2014) लोकभारती, इलाहाबाद, पृ०
8. डा० रामविलास शर्मा स्वाधीनता संग्रामः वदलते परिप्रक्ष्य, (2003) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली पृ० 132
9. तदैव
10. तदैव पृ० 133
11. तदैव
12. तदैव
13. तदैव पृ० 134
14. तदैव
15. तदैव पृ० 83
16. तदैव

17. सुरेन्द्र नाथ सेन, अठारह सौ सत्तावन (1857) प्रकाशन विभाग नई दिल्ली पृ० 41

18. तदैव

19. तदैव

20. डा० रामविलास शमा स्वाधीनता संग्राम बदलते परिप्रेक्ष्य (2003) पृ० 218, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली व़िश्वविद्यालय, दिल्ली पृ० 132

21. तदैव

22. तदैव

23. तदैव

24. तदैव

25. तदैव 2019

26. एगनस मेडिसन, द वर्ल्ड इकोनोमी, (2007) अकादमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली पृ० 110-119

27. संपादक अनिल कुमार, कार्ल मार्क्स के भारत संदर्भ में 2012 सिद्धार्थ बुक्स नई दिल्ली पृ० 10-11

28. डा० रामविलास शमा स्वाधीनता संग्राम: बदलते परिप्रेक्ष्य (2003) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली व़िश्वविद्यालय, दिल्ली पृ० 132

29. तदैव

30. तदैव

31. तदैव

■ ■ ■

स्व से स्वराज और आत्मनिर्भर भारत: नाना जी देशमुख के विशेष संदर्भ में

अभय कुमार शुक्ल
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

महात्मा गांधी की कल्पना के ग्राम स्वराज्य को अपने पुरुषार्थ, दूरदृष्टि और प्रभावी कार्यान्वयन द्वारा धरातल पर उतारने वाले का नाम नाना जी देशमुख है इनका जन्म महाराष्ट्र के एक मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हिंगोली जिले के कडोली कस्बे में शरद पूर्णिमा के दिन 11 अक्टूबर, 1916 को हुआ था। नानाजी का मानना था कि ग्रामीण गरीबों का उत्थान और ग्रामीण जीवन को मजबूत करना ही आत्मनिर्भर भारत बनने का एकमात्र रास्ता है। उनके उपदेश **"ग्रामोदय" और "स्वावलंबन"** महान व्यक्तित्वों जैसे स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसे राज्य पुरुषों के दर्शन को दर्शाते हैं। उनमें एक महान दूरदर्शी और जमीन से जुड़े व्यवहारिक व्यक्तित्व का मेल था।

नानाजी देखमुख एक प्रमुख समाज सुधारक एवं राजनेता रहे हैं, जिन्होंने दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना की तथा इस संस्थान के माध्यम से उन्होंने गाँव के विकास हेतु निष्काम भाव से कार्य किया। नानाजी ने ग्रामीण विकास के लिए चार सूत्र- शिक्षा, सदाचार, स्वावलंबन एवं स्वास्थ्य को प्रमुख माना है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित, सदाचारी स्वावलंबी व स्वस्थ्य हो, इन्हीं उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए उन्होंने दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना की। यह संस्थान दीनदयाल जी के एकात्म मानव दर्शन और गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य के विचारों से साम्यता रखकर सतत ग्रामीण विकास हेतु कार्य कर रहा है। जिसकी सबसे बड़ी और महत्वकांक्षी परियोजना **चित्रकूट प्रकल्प** है। चित्रकूट एक धार्मिक क्षेत्र है जो मध्य प्रदेश के सतना जनपद एवं उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जनपद के मध्य फैला है। संस्थान चित्रकूट परिधि के ग्रामीण अँचल में अनेक प्रकार के शैक्षणिक, रोजगारपरक स्वास्थ्य एवं आचार-व्यवहार से संबंधित अनेक कार्य कर रहा है। संस्थान ने ग्रामीण अंचलों में अनेक स्कूल, अस्पताल व रोजगारपरक प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की है। किसानों को उनकी कृषि संबंधी समस्याओं का निवारण तथा उन्नत खाद, बीज एवं उन्नत नस्ल के दुधारू पशुओं से संबंधित अनेक आवश्यक जानकारी कृषि केंद्रों पर दी जाती है। इस प्रकार शिक्षा, स्वावलंबन, सदाचार एवं स्वास्थ्य पर कार्य करते हुए संस्थान ने ग्रामीण विकास का मॉडल प्रस्तुत किया है।

स्व : स्वधर्म, स्वराज और स्वदेशी

भारत का स्वतन्त्रता आंदोलन विश्व के युगांतकारी आंदोलनो मे से एक है। यह सैकड़ों वर्षों की पराधीनता की समाप्ति और राष्ट्रीय आत्मा (स्व) के पुनर्जागरण का प्रतीक है। 2019 में अपने विजयदशमी संबोधन में सरसंघचालक डॉ. मोहन राव भागवत जी ने सामाजिक परिवर्तन के लिए 'स्व' केंद्रिक' सामूहिक दृष्टि विकसित होने या किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने हिंदुत्व

को राष्ट्र के 'स्व' की आत्मा रूप में परिभाषित किया। उनका कहना था कि "'स्व' का सार ही हमारे वैचारिक चिंतन और हमारी कार्ययोजना का दिशाबोधक होना चाहिए। यही वह दीपस्तम्भ हो सकता है जो हमारे देश की सामूहिक संचेतना की दिशाओं, महत्वाकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं को आलोकित करे। भौतिक जगत् में हमारे द्वारा किए जाने वाले सभी प्रयास और परिणाम भी इसी सिद्धांत पर आधारित होने चाहिए। तभी और केवल तभी भारत को स्व-निर्भर कहा जा सकता है।"[1]

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में भारतीय राष्ट्र का उद्देश्य मानव जाति को आध्यात्मिक बनाना है। महर्षि अरविन्द हमारे "स्व" को धर्म या सनातन धर्म के रूप में परिभाषित करते हैं। श्री गोलवलकर गुरुजी हमारे "स्व" को "अस्मिता" अर्थात हमारी पहचान कहते हैं। गुरुजी दक्षिणी भारत में दिए गए अपने भाषणों में अक्सर "स्व" को दो शब्दों से जोड़ते थे - अस्मिता और अस्तित्व। उन्होंने आगे अस्मिता को 'मैं हूं' और अस्तित्व को 'यह है' के रूप में समझाया। पंडित दीन दयाल उपाध्याय का 'चिति' का विचार भी हमारे "स्व" का एक पहलू है। भारतीय विश्वदृष्टिकोण भी हमारी इसी "स्व" धारणा से निर्मित हुआ है। अपनी "स्व" की इस धारणा के आधार पर हम संसार को मातृ केन्द्रित स्थान के रूप में देखते हैं। हमारे प्राचीन विद्वानों ने कहा है, " माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः "। 'पृथिविसूक्त' में हम धरती माता की पूजा करते हैं। इसी संदर्भ में श्री रंगाहरिजी ने कहा था, हमें देशभक्ति के स्थान पर मातृभक्ति का उल्लेख करना चाहिए क्योंकि हम अपना जन्म स्थान पितृभूमि नहीं बल्कि मातृभूमि मानते हैं।[2]

अगर हम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को दृष्टिगत रखते हुये विश्लेषण करे तो हम पाएंगे कि स्वदेशी आंदोलन के बाद से 'स्व' के कमजोर पड़ते चले जाने के पीछे मुस्लिम लीग (1906 में स्थापित), अंग्रेजों तथा कांग्रेस के एक वर्ग की संयुक्त व समान भूमिका रही।[3] अत: राजनैतिक तथा आर्थिक शोषण या धर्मांतरण तथा इन सबसे भी महत्त्वपूर्ण भारत का विभाजन - ये सब यद्यपि औपनिवेशिक शासकों द्वारा 'स्व' के विचार को कमजोर करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयास थे, अपितु हमारा स्वतंत्रता संग्राम केवल औपनिवेशिक ताकतों के राजनीतिक एवं आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए नहीं था, बल्कि हमारे विस्मृत 'स्व' के पुनः अनुसंधान का भी संघर्ष था।[4] हम सभी ने आजादी का अमृत महोत्सव मनाया यह महोत्सव सिर्फ महोत्सव भर ही नही था बल्कि यह हमे स्वतंत्रता संग्राम के पूरे आख्यान के अपने विस्मृत 'सामूहिक सत्य' को नए दृष्टिकोण से परखने, स्वतंत्रता संग्राम के गुमनाम नायकों को पहचानने तथा साथ-ही-साथ अपने अतीत और अपनी सामूहिक पहचान का विश्लेषण करने की दृष्टि में परिवर्तन लाने का एक श्रेष्ठ अवसर भी साबित हुआ।

श्री अरविंद, महात्मा गांधी तथा अन्य महापुरुषों ने स्वधर्म, स्वराज एवं स्वदेशी के विचार के साथ इस सामाजिक-दार्शनिक विचार को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इस त्रयी में पहली अवधारणा थी - स्वधर्म, जिसके प्रकट रूप वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार रखने वाले भारतीय चिन्तन में सभी का उत्थान, इसमें प्राणी जगत्, जंगल, नदियाँ तथा भूमि आदि सभी कुछ समाहित है। दूसरा है स्वराज अर्थात् स्व-शासन। स्व-शासन छोटे स्तर पर, विकेन्द्रीकृत, स्व-संगठित तथा स्व-निर्देशित सहभागितापूर्ण शासन की संरचना है। इसका तात्पर्य आत्म-परिवर्तन, आत्म-अनुशासन तथा आत्म-संयम भी है। इस प्रकार स्वराज शासन की एक नैतिक, पारिस्थितिकीय

तथा आध्यात्मिक प्रणाली है।[5] राष्ट्रजीवन की दिशा दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं कि "स्वराज की व्याख्या में तीन बातें प्रमुख रूप से आती हैं। पहली बात तो यह है कि राज्य उन लोगों के द्वारा संचालित हो जो राज्य के अंग हों। दूसरी विशेषता यह है कि ऐसा राज्य राष्ट्र के हित में चलना चाहिए यानी राष्ट्रीय हित में नीतियों का संचालन होना चाहिए। और तीसरी बात यह है कि ऐसे राज्य में राष्ट्र का हित साधने का सामर्थ्य अपना स्वयं का होना चाहिए। यानी स्वावलंबन के बिना स्वराज्य की कल्पना ही गलत है। राज्य अपने राष्ट्र के घटकों के हाथ में रहने पर भी यदि आर्थिक अथवा वैदेशिक मामलों में किसी अन्य राष्ट्र का पिछलग्गू बन गया या दबाव में आने लगा तो स्वराज्य निरर्थक हो जाता है। सुरक्षा के मामले में यदि राज्य आत्मनिर्भर नहीं, नीतियों के मामले में स्वतंत्र नहीं और आर्थिक योजना में स्वयं पूर्ण नहीं तो वह राष्ट्र के लिए अहितकर कार्य करने की ओर प्रेरित हो जाता है। ऐसा परावलंबी राज्य विनाश का कारण बनता है।"[6] तीसरा है स्वदेशी अर्थात् स्थानीय अर्थतंत्र, जो कि स्थानीय उत्पादों और उपभोक्ताओं के लिए स्थानीय माँग और आपूर्ति की श्रृंखला को पुनर्स्थापित करने का एक प्रयास था। पहले, स्वदेशी का विचार केवल अर्थतंत्र तक ही सीमित था किंतु बाद में यह अवधारणा सामाजिक- सांस्कृतिक आयामों में भी प्रतिफलित होती देखी जा सकती है। यदि इस त्रिमूर्ति (स्वधर्म, स्वराज व स्वदेशी) का हम सूक्ष्मतापूर्ण अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि इन तीनों शब्दों के मूल में जो समान शब्द है, वह है-'स्व'। यदि हम उपरोक्त त्रयी (स्वधर्म, स्वराज एवं स्वदेशी) में उपस्थित 'स्व' की संकल्पना पर विचार करें, तो हम पाते हैं कि औपनिवेशिक संरचना विभिन्न तरीकों और तकनीकों के माध्यम से भारतीय 'स्व' के इस विचार के दमन का ही एक प्रयास था।[7]

आत्मनिर्भर भारत : नाना जी देशमुख -

विचारों का स्वराज : एकात्म मानववाद की एक अभिनव संकल्पना

आजादी (15 अगस्त, 1947) के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक प्रेस वक्तव्य जारी किया, जिसमें कहा गया था कि "हमें 15 अगस्त को इस प्रकार से मनाना है जिससे लोगों की मानसिकता में यह परिवर्तन आ जाए कि वह स्वतंत्र भारत के स्वाभाविक नागरिक हैं... हमारी नियति अब हमारे हाथों में है... अब हमें एक मजबूत और सम्पन्न राष्ट्र का निर्माण करना है... हमें एक लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करना है... हमें व्याप्त असमानता, गरीबी और बेरोजगारी को मिटाना है... हमें लोगों का सशक्तिकरण करना है।"[8] देखा जाए तो कांग्रेस के इस संकल्प में आर्थिक एव राजनीतिक आदि आयामों का उल्लेख तो था; किन्तु लम्बी दास्तां की जो छाया सांस्कृतिक और भारत के विचारों की दुनिया में हुआ था उसका सीधा उल्लेख नहीं था। जाहिर है राष्ट्र के सशक्तिकरण में संस्कृति और मानसिक उन्नति दोनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उपनिवेशवाद ने भारतीय मन को अपने अनुकूल ढालने का उपक्रम किया था, इसलिए आजादी के बाद हर भारतीय को अपनी सांस्कृतिक और सभ्यताई पहचान को प्राप्त करना भी एक कम बड़ी चुनौती नहीं थी। पश्चिम को देखकर और उसकी भावनाओं का आदर करते हुए भारत को परिभाषित करने की जो कोशिशें हुई; उसने अनौपवेशिक उपक्रम को शिथिल कर दिया।[9] यही कारण था कि जब स्वतंत्रता के लगभग 15-18 वर्षों के बीच दीनदयाल जी ने विचार करना प्रारंभ किया कि हमें स्वतंत्रता तो मिली किन्तु इस स्वतंत्रता में 'स्व' कहाँ है और धीरे-धीरे अपने देश में आजादी के बाद जिस प्रकार का सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक तंत्र चला उसे देख-समझ कर तो उन्हें पीड़ा होने लगी। उनका सपना टूट गया, विश्वास बिखर गया। उनको धीरे –धीरे यह एहसास होने लगा कि हम अभी भी मानसिक गुलामी के

पाश मे बंधे हुये हैं, तब इस चुनौती को स्वीकार करते हुए वैचारिक क्षेत्र मे भारतीय चिंतन पर आधारित एक अभिनव संकल्पना देने का काम पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने 22-25 अप्रैल 1965 को मुंबई मे दिये चार व्याख्यानों के माध्यम से किया।[10] जो आगे चलकर ''एकात्म मानववाद'' दर्शन से प्रचलित हुआ अर्थात इस विचार को प्रस्तुत करने की पृष्ठभूमि में दो मुख्य बातें ध्यान में रही पहला - स्वतंत्रता के बाद भी पश्चिमी विचारों का भारत के नेतृत्व पर प्रभाव और वही चिंतन व नीति निर्माण का आधार। दूसरा - सत्ता प्राप्ति के लिए विचारधाराविहीन राजनैतिक गठजोड़ एवं सत्ता को ही समाज परिवर्तन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन मानना।[11]

एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है- मानव-जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म सम्बन्धों का दर्शन। एकात्म मानव दर्शन व्यक्ति जीवन का भी उसके सभी अंगी का ध्यान में रखते हुए संकलित विचार करता है। मनुष्य प्राणी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संकलित रूप है। इसलिए मानव का सर्वांगीण विकास क्रम उसके शरीर मन बुद्धि और आत्मा सबका संकलित विचार है। एकात्म मानववाद दर्शन के मूल में व्यक्ति है। इस दर्शन में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र एवं इसके पश्चात् सम्पूर्ण मानवता एवं चराचर सृष्टि पर विचार किया गया है। एकात्म मानव दर्शन उपरोक्त सभी इकाईयों में अंतर्निहित परस्पर पूरक संबंधों को स्पष्ट करते हुए उन पर विचार करता है। **भारतीय चिंतन जगत में सृष्टि एवं समष्टि को एक पूर्ण के रूप में देखा जाता है। पंडित जी ने भी मानव को समाज एवं प्रकृति व उनके सम्बन्धों को भी समग्र रूप में देखा। भारतीय चिंतको एवं विचारकों द्वारा प्रतिपादित धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष का विचार भी एकात्म मानव दर्शन में समाविष्ट है।** एकात्म मानव दर्शन एक ऐसी अवधारणा है जिसको सर्पिल आकार की मण्डलाकृतियों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है जिसके केन्द्र में व्यक्ति होता है, व्यक्ति को घेरे हुए सर्पिल आकृति परिवार, परिवार को घेरे हुए अगली सर्पिल आहात समाज, उसके बाद राष्ट्र समष्टि फिर परिमेष्टि की अपने आप में समाहित किए हुए है।

अर्थशास्त्री नाना जी -

नाना जी के आर्थिक चिंतन का केंद्र-बिंदु स्वावलंबन हैं। उनका मानना था कि ''स्वावलंबन के बिना स्वाभिमान हासिल नहीं किया जा सकता, और स्वावलंबन का पाठ तो हमारी देशज ज्ञान-परंपरा में बहुत विस्तार से पढ़ाया गया है। वास्तव में तो यह किसी पाठ्यक्रम का नहीं, व्यावहारिक ज्ञान का हिस्सा था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हासिल और विकसित ज्ञान, जो कला से प्रारंभ होकर विज्ञान बन गया।''[12] और यही ग्राम विकास का मूलमंत्र भी है। यही स्वावलंबन का अधिष्ठान है।

नाना जी कहते है कि ''ग्राम-पुनर्रचना का विषय कोई नया नहीं है। स्वाधीनता संघर्ष के दिनों में भी अनेक विद्वानों की दृष्टि ग्रामों की दुर्दशा पर गई थी। दादाभाई नौरोजी और रमेशचंद्र दत्त आदि ने ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीय ग्रामों के शोषण के बारे में काफी खोजपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की थी। भारतीय राजनीति में गांधीजी के प्रवेश के पूर्व बंगभंग व स्वदेशी आंदोलनों के दिनों में ग्रामों में जाकर बसने व काम करने का विचार अनेक युवाओं के मन में उठा था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही 1909 में गांधीजी ने हिंद स्वराज' नामक छोटी सी पुस्तिका में पाश्चात्य औद्योगिक व शहरी सभ्यता के दोषों और दुष्परिणामों पर दृष्टि केंद्रित की थी। उन्होंने

ग्राम्य जीवन को ही मानव सुख और शांति का एकमात्र मार्ग बताया था। 1915 में भारत आगमन के पश्चात् उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करते हुए भी ग्राम पुनर्रचना के कार्य को वरीयता प्रदान की।"[13] "एक समग्र दृष्टि को लेकर गाधीजी ने भारत की आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक व राजनीतिक पुनर्रचना का केंद्र-बिंदु ग्राम्य जीवन को बनाया। गांधीजी से प्रेरणा लेकर जे. सी. कुमारप्पा, भरतन कुमारप्पा आदि विद्वानों ने ग्राम-पुनर्रचना के महत्त्व का प्रतिपादन करने के लिए विपुल साहित्य का सृजन किया, जिसमें ग्रामवाद' को पाश्चात्य औद्योगिकवाद व समाजवाद आदि विचारधाराओं के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः गांधीजी को ही 'गांव की ओर वापस लौट चलो' आंदोलन का प्रवर्तक कहा जा सकता है।"[14]

नाना जी हमेशा नए वैज्ञानिक आविष्कारों व खोजों के अनुप्रयोग का बेहद आग्रह रखते थे। उनके बारे में जानने की उनके मन में हमेशा जिज्ञासा बनी रहती थी। कृषि विज्ञान केंद्र, आधुनिक प्रयोगशालाएं, जमीनी प्रयोगशालाएं, अनुसंधान केंद्र नानाजी की योजनाओं के सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा थे। जब वे पशुपालन के महत्व को रेखांकित करते थे तो गाय के धार्मिक पक्ष की नहीं बल्कि उसके आर्थिक व वैज्ञानिक पक्ष की भी बात करते थे।[15] नानाजी का मत था कि "आर्थिक चिंतन बाल्यकाल से ही परंपराओं के द्वारा विकसित होता है। ऐसी परिस्थिति में वह देशानुकूल होता है। आधुनिक शिक्षा उस चिंतन को युगानुकूल बनाती है। लेकिन आजादी के पश्चात् हमारी शिक्षा व्यवस्था व शासन प्रणाली ने परंपराओं को तिलांजलि देने पर मजबूर कर दिया और हम पर पाश्चात्य व्यवस्थाएं थोप दीं। इससे हमारा आर्थिक चिंतन संभवत समयानुकूल तो हो गया, लेकिन देशानुकूल नहीं रहा। इसी कारण हम इतनी विसंगतियों व विषमताओं से जूझ रहे हैं।"[16]

शिक्षाविद नाना जी –

शिक्षा के बारे में नाना जी देशमुख की कल्पना आम धारणाओ से बहुत भिन्न थी। किताबी शिक्षा को व्यावहारिक व मानव-प्रदत्त शिक्षा के सामने गौण मानते थे। उनके लिए शिक्षा व संस्कार एक-दूसरे को पूरक मानते थे। नाना जी का स्पष्ट तौर में मानना था कि शिक्षा का मर्म देशानुकूल होना चाहिए, लेकिन उसमें गतिशीलता अवश्य बनी रहनी चाहिए, ताकि विद्यार्थी स्वयं के मुताबिक स्वयं को ढाल सके।[17] अगर हम विश्लेषण करे तो हम पाएंगे कि यही हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का भी मूल उद्देश्य है। नाना जी देशमुख जी का मानना था कि शिक्षा राष्ट्र नवनिर्माण का माध्यम है, इसलिए इसके माध्यम से व्यक्तित्व के सम्पूर्ण और सतत विकास का समुचित दायित्व समाज का है।[18] नैतिक शिक्षा नानाजी के लिए सर्वाधिक और सबसे महत्त्वपूर्ण थी और उनका मानना था कि यह लोक शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है। उनका कहना था कि विद्वत्ता को संयत करने के लिए उसे लोक शिक्षा के धरातल पर नहीं उतारा गया तो विद्वत्ता पथभ्रष्ट हो जाएगी। लोक शिक्षा ही मनुष्य को नित्य प्रति की समस्याओं से जूझने का मार्ग प्रशस्त करती है। जब तक शिक्षा का हेतु स्पष्ट न हो, शिक्षार्जन का कोई अर्थ नहीं है, और वह राष्ट्रनिर्माण का माध्यम नहीं हो सकती, सिर्फ औपचारिक विभूषण ही होकर रह जाती है।[19] नाना जी का मानना था कि भारत के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण अंचल की युगानुकूल पुनर्रचना करना वर्तमान काल की प्राथमिक आवश्यकता है।

नाना जी राष्ट्र की नवरचना का केंद्र बिन्दु विश्वविद्यालय को मनाने थे। उनका कहना था विश्वविद्यालयों की संलग्नता ही शिक्षार्थियों में सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करेगी। तभी देश की एकता व अखंडता के लिए खतरा बने एवं हिंसाचार में जुटे विघटनकारी तत्त्वों का निर्मूलन संभव हो पाएगा। विश्वविद्यालयों का दायित्व है कि वे जनजीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु उपाय खोजें। इन खोजों की परिणामजनकता जानने के लिए अपने कार्यक्षेत्र में अपनी खोजों का व्यावहारिक धरातल पर परीक्षण करें और उन्हें सर्वांगपूर्ण बनाए। शिक्षा एवं शोध के साथ-साथ आधुनिकता, वातावरण के अनुकूल प्रशिक्षण एवं प्रसार पर भी बल देना आवश्यक है। इस प्रक्रिया के माध्यम से ही शिक्षार्थियों को अपने विषयों का अर्थपूर्ण एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होगा, सामान्य लोगों में भविष्य के प्रति आत्मविश्वास जगेगा एवं पुरातन एवं नूतन पीढी में सामंजस्य स्थापित होगा, जिससे स्वावलंबनपूर्ण जीवन का सूत्रपात हो सकेगा। विश्वविद्यालयों द्वारा इस प्रकार विकसित शिक्षा देश-विदेश में लोकप्रिय व अनुकरणीय बनेगी। इस उद्देश्य पूर्ति के लिए निम्न अभिनव कार्यक्रम निश्चित किए गए हैं।[20]

समाजशास्त्री नाना जी –

एक समरस, संस्कारित, सुदृढ़, सबल, सशक्तीकृत समाज, नाना जी के विचारों व कर्म का केंद्र बिन्दु था। एकात्म मानव ऐसे ही समाज का हिस्सा बनकर एक स्वस्थ, समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। उनका स्पष्ट मत था कि सरकार भी समाज की अनुगामी होनी चाहिए। उनकी दृष्टि में सरकार तो समाज के सामने गौण है। उनके सभी विचार व कर्तृत्व इसी धारणा के इर्द-गिर्द घूमते रहे।[21] उनका कहना था कि सामाजिक परिवर्तन समग्र चिंतन से ही संभव है।

“स्वतंत्रता पाए अर्धशताब्दी का काल बीत गया, किंतु क्या हम अपने स्वातंत्र्य संग्राम का लक्ष्य प्राप्त कर पाए? ग्रामीण विकास पर हजारों करोड़ रुपए खर्च कर दिये हैं। क्या इसके इसके बावजूद भी समाज के अंतिम व्यक्ति तक हम मूलभूत बुनियादी जरूरतों की पूर्ति कर पाये हैं? प्राकृतिक संसाधनों का मूलभूत एवं अक्षय स्रोत ग्रामीण अँचल उजड़ रहा है। शहरों की सभी व्यवस्थाएं चरमरा रही हैं। यही क्रम चलता रहा तो देश का भविष्य क्या होगा?”[22] भारत का समाज जो विश्व का सर्वाधिक पुरातन है अपनी विविधता और अलौकिक प्राकृतिक संपदा के कारण उसे कई बार आक्रमणों का शिकार भी होना पडा हर आक्रमण का हमने अपने पराक्रम के साथ विजय प्राप्त की। परंतु फिर भी हमें सैकड़ो साल एक दूसरी हुकूमत मे रहना पड़ा था।[23]

इतने लंबे समय तक राजसत्ता से वंचित होने के बावजूद सामाजिक जीवन एवं अपनी संस्कृति को हम कायम रख सके। इसका कारण यह था कि राष्ट्र की मूलभूत शक्ति राजसत्ता में नहीं, बल्कि उसके समाज में होती है। इसकी जानकारी हमारे मनीषियों को थी। वे जानते थे कि अपने समाज ने मानवीय जीवन में ‘सर्वे भवन्तु सुखिन’ की जो अद्वितीय ऊंचाई अर्जित की थी, वह राजसत्ता की सीढ़ी द्वारा नहीं अपितु तपस्वी जीवन त्याग, और पुरुषार्थ से प्राप्त की थी। हमारे स्वतंत्रता संग्राम के दार्शनिकों- स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद और महात्मा गांधी आदि ने स्पष्ट शब्दों में कहा था- हमारा स्वातंत्र्य संघर्ष केवल स्वराज्य प्राप्ति के लिए नहीं है, अपितु पश्चिम में उपजी उपभोगवादी अमानवीय सभ्यता के चंगुल से मानव मात्र को मुक्ति दिलाने के लिए है।"[24] भारतीय

परंपरा ने कभी भी मानव मानव में भेद नहीं माना। फलस्वरूप, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का प्रेरक भारत ही रहा है। भारतीय परंपरा केवल प्राणी मात्र को ही अपनत्व की भावना से अनुभव करने की प्रेरणा नहीं देती।

नाना जी कौटुंबिक प्रबंधन को समाज की मजबूती का आधार मानते थे। उनका मानना था कि "प्रत्येक जीव-जन्तु सभी स्वातंत्र्य के अभिलाषी है। इसमें मानव अपना विशेष स्थान रखता है। मानव शरीर मन, बुद्धि एवं आत्मा का एकात्म रूप है। आत्मा द्वारा प्रेरित संवेदनशीलता का अर्थात् शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से मानवीयता का व्यावहारिक रूप प्रकट होता है। वस्तुत: शरीर ही मानवीयता का एकमेव वाहक है। उसे आजीवन स्वस्थ बनाए रखने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।"[25] नाना जी कहते थे कि सामूहिकता मानुष्य स्वभाव है। परस्पर-पूरकता सामूहिकता की अनिवार्यता है। सामाजिक जीवन बिना समुचित प्रबंध सुखदायी नहीं हो सकता, अत प्रबंध का रूप ऐसा होना चाहिए, जिसमें स्वेच्छा की गुंजाइश न हो, किंतु स्वतंत्रता का हनन भी न हो, अन्यथा प्रबंध अल्पजीवी बनता है। मानवीयता पर आधारित प्रबंध ही इसका एकमेव उपाय है। यह कौटुबिकता की भावना के आधार पर ही संभव है।[26]

नाना जी कहते थे कि "नवस्वतंत्र देशों के लिए तथाकथित विकसित देशों की समस्यामूलक औद्योगीकरण की पद्धति अपनाना सभी प्रकार से अहितकर है। ऐसे देशों को अपनी वस्तुस्थिति के अनुसार ही अपनी आवश्यकताओं एवं प्रतिभा के आधार पर अपने विकास के लिए वैकल्पिक तकनीकी एवं औद्योगिक विधियों की खोज करनी होगी उसका आधार होना चाहिए मानवीयता। मानवीयता का स्रोत है आत्मा प्रणीत संवेदनशीलता। वही मानव को सहअस्तित्व की प्रेरणा प्रदान करती है। सहअस्तित्व ही मानव मात्र की सुख-शांति एवं समृद्धि का आधार है। संसार में जीव-जंतु, नदी-नाले, पेड-पर्वत आदि हजारों सालों से साथ-साथ रहते आए हैं। मानव भी उन्हीं में से एक है। वह अपने अस्तित्व के लिए अन्यों के उत्पीडन का कारण न बने। अपनी संवेदनशीलता पर आधारित सृजनशक्ति का सदुपयोग अपने साथ-साथ सभी के लिए सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने में करे। यही मानवीयता है। वैकल्पिक औद्योगिक नवरचना इसी आधार पर करनी होगी।"[27]

नाना जी कहते थे कि "उपभोग मानव की अनिवार्यता है, अत: शारीरिक दृष्टि से सक्षम महिला-पुरुष कम-से-कम उतने मूल्य का उत्पादन अवश्य करें, जितनी मात्रा में वे उपभोग करते हैं। प्रचलित औद्योगिक रचना में उत्पादन करनेवाले हाथ तेजी से घटाए जा रहे हैं, जबकि खानेवालों की संख्या बढ़ रही है। ऐसी हालत में न बेकारी मिटेगी, न गरीबी घटेगी। नौकरियों द्वारा इस समस्या का निराकरण कदापि संभव नहीं है। नौकरियों की संभावना एक सीमा से अधिक न होती है, न होनी चाहिए, अत: अधिकाश नागरिकों के लिए स्वरोजगार उपलब्ध करानेवाला औद्योगीकरण ही विश्वव्यापी समस्याओं का उपाय है।"[28] जो आत्मनिर्भर भारत से ही संभव है।

राजनीतिज्ञ नाना जी –

नाना जी देशमुख जी का स्पष्ट तौर पर मानना था कि 'विकास की दिशा' 'जनता' की सहमति से तय होनी चाहिए। उन्होने 22 अप्रैल, 2002 को 'द इंडियन एक्सप्रेस' के एक लेख मे कहा था कि "दुर्भाग्य से आज के नेताओं को उदार चरित्र भारतीय मूल्यों की याद दिलाना कठिन हो गया है। वे भारतीय दर्शन की खुली मानसिकता को तोड़-मरोडकर अपने राजनैतिक स्वार्थों को पूरा करने के लिए उसे तोड़-फोड़ की राजनीति में बदल चुके हैं। अर्थहीन मुददों को भड़काकर उन्होंने समाज में कलह पैदा कर दी है। इन नेताओं को जनता के भले से कोई लेना-देना नहीं है"।[29] आगे वो लिखते हैं "भारत के नेतृत्व को राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं कहा जा सकता। एक व्यक्ति जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर नेता बन जाता है। सारी समस्या यह है कि राष्ट्र का एक इकाई के रूप में विचार नहीं हो रहा, मंत्रियों का चयन उनकी क्षमताओं या विकास कार्यों में योगदान के आधार पर नहीं वरन् उनकी गुटीय पहचान के आधार पर होता है"। वे आगे लिखते हैं कि "मूलभूत त्रुटि ही यह रही कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सरकार और प्रशासन यह मानते रहे कि जनता पर विकास कार्य थोपे जा सकते हैं। जनता से पूछने की जरूरत नहीं। विकास का तो लक्ष्य है कि शासन लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रोत्साहित करे। विकास की मूल समस्याओं को नजरअंदाज किया गया"। " प्राकृतिक संसाधनों से भरे-पूरे गांव छोड़कर लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं। सरकार उन किसानों के लिए कोई नीति क्यों नहीं बनाती जिनके पास अलाभकारी जातें हैं? यदि सभी किसान आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाएं और अपनी बचत का कुछ हिस्सा राष्ट्रीय आय में भी दे सकें तो कितनी पूंजी सृजन होगी। यह सब करने की बजाय हम विदेशी कंपनियों के पीछे भागते हैं, जिनका मकसद भारत का फायदा नहीं बल्कि अपना फायदा है। अपने स्रोतों के इस्तेमाल से कैसे देश का हित हो, इस ओर हमारा ध्यान नहीं है"।[30]

नाना जी कहते हैं कि आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को व्यावहारिक पटल पर उतारने के लिए सर्वप्रथम नेतृत्व का ईमानदार होना जरूरी है, एक राष्ट्र का विचार उन नेताओ के आधार पर नही पनप सकता है जो विभाजनकारी नीतियों के माध्यम से राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करते हैं। "चुनाव लोकतंत्र का आधार है और चुनावी प्रक्रिया के लिए फंड जरूरी है। यही तर्क हमारी राजनीति को चलाता है। लेकिन इस तर्क से लोगों के अधिकतम भले के लिए लोकतंत्र मजबूत नहीं होगा और न ही राजनीतिक अवसरवादिता समाप्त होगी। इस प्रकार की राजनीति से देश को कमजोर करनेवाली ताकतों को पनाह और प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे राजनीतिक गठजोड सत्ता में हैं, जिनका विकास के मुद्दों से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसे गठजोड़ देश के भले के लिए नहीं बल्कि सत्ता का मजा लेने के लिए गठित होते हैं"।[31] नाना जी मानना था कि "लोकतंत्र का अर्थ है कि कोई भी नागरिक वंचित न रहे और जब तक हर सक्षम व्यक्ति को लाभयुक्त रोजगार (स्वरोजगार समेत) उपलब्ध नहीं होता, तब तक गरीबी साधनहीनता का अंत नहीं हो सकता। यह लक्ष्य शिक्षा और उचित स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता से ही पाया जा सकता है"।[32] "जो भी जिस लोकसभा या विधानसभा चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ना चाहे, उसकी प्राथमिक चिंता उस क्षेत्र का विकास और सेवा कार्य होना चाहिए। विकास कार्यों में लगे उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने के लिए काले धन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। मतदाता ऐसे उम्मीदवारों को चुनकर भेजने के लिए स्वयं ही उत्सुक होगा"[33]

नाना जी युगानुकूल नवरचना से जनवरी 2003 में लिखे एक लेख मे बताते हैं कि “सरकार पर निर्भरता ही हमारी समस्याओ की जड़ है”। “**जनशक्ति ही विकास का यंत्र होती है अर्थात हमारे सामज ने सरकार को नही वरन जनशक्ति को विकास और उत्थान का यंत्र माना है**”। **‘आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'सर्वेपि सुखिनः सन्तुः', 'सर्वे सन्तु निरामयः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे मूल्य स्थापित करने की कामना प्रकट की है**। समाज का आधार सरकार नही अपितु धर्म है। सरकार को सर्वेसर्वा मानना और समाज के मूल गुणो को उजागर न होने देना हमारे राष्ट्र के अस्तित्व को अवनति में डाल देगा। इसका अर्थ यह नही है कि हमारी परंपरा में शासनसत्ता की महत्ता नही थी, लेकिन शासन ही सबकुछ नही था। राजशक्ति का काम है देश की सुरक्षा, व्यवस्था, शांति और समाज में समरसता बनाए रखना। इसके अलावा आर्थिक विनिमय, विदेशों से संबंध बनाना और न्याय प्रणाली मजबूत रखना।[34]

आत्मनिर्भर भारत के पंच संकेतक हैं – प्रधानमंत्री के “पंच प्रण”

15 अगस्त,2022 को भारत की आज़ादी के 75 वर्ष पूर्ण हुये और पूरा देश ने अमृत महोत्सव को मनाया। आज़ादी का अमृत महोत्सव यानी- आज़ादी की ऊर्जा का अमृत, आज़ादी का अमृत महोत्सव यानी- स्वाधीनता सेनानियों से प्रेरणाओं का अमृत। आज़ादी का अमृत महोत्सव यानी- नए विचारों का अमृत। नए संकल्पों का अमृत। आज़ादी का अमृत महोत्सव यानी-आत्मनिर्भरता का अमृत। और इसीलिए, ये महोत्सव राष्ट्र के जागरण का महोत्सव है। ये महोत्सव, सुराज्य के सपने को पूरा करने का महोत्सव है। ये महोत्सव, वैश्विक शांति का, विकास का महोत्सव है।[35] इस वर्ष लाल किले से देश के नाम अपने सम्बोधन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि भारत के विकास और भविष्य के लिए अगले 25 वर्ष बेहद महत्वपूर्ण हैं।

उन्होंने अपने भाषण में आजादी के ‘अमृत काल’ में ‘पंच प्रण’ के संकल्प का आह्वान किया है, जो देश की आजादी के 100 वर्ष पूरे होने पर देश की स्थिति के दिशादर्शक तत्व है। प्रधानमंत्री जी ने कहा की 2047 में देश की आजादी के 100 वर्ष पूरे हो जाएंगे और इस पंच प्रण को स्वर्णिम काल तक हमे पूरा करना है। **‘पंच प्रण’ में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने ‘विकसित भारत’, ‘गुलामी से मुक्ति’, ‘विरासत पर गर्व’, ‘एकता व एकजुटता’ और ‘नागरिकों के कर्तव्य’ को रखा है।**

विकसित भारत का निर्माण - प्रधानमंत्री मोदी के ‘पंच प्रण’ में पहला बड़ा संकल्प है- विकसित भारत। उन्होंने कहा कि अब देश बड़े संकल्प लेकर चलेगा। छोटे-छोटे संकल्प का अब समय नहीं है। आने वाले 25 वर्षों में हमें किसी भी कीमत पर विकसित भारत चाहिए, उससे कुछ कम नहीं होना चाहिए। प्रधानमंत्री जी ने कहा कि स्वच्छता अभियान, कोरोना वैक्सीनेशन अभियान, ढाई करोड़ लोगों को बिजली कनेक्शन, खुले में शौच से मुक्ति, रिन्यूअल एनर्जी, हम सभी मानकों पर संकल्प से आगे बढ़ रहे हैं। इन्हीं सभी बड़ी चीज़ों ने भारत के विकसित देश की नींव डाली है।

गुलामी की मानसिकता से मुक्ति- इसे हम नए संसद् भवन के निर्माण से समझ सकते हैं। जिसकी आधारशिला प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 10 दिसंबर, 2020 को वैदिक विधि-विधान से रखी। उस अवसर पर उन्होंने कहा, "आज का दिन ऐतिहासिक है। देश में

अब भारतीयता के विचारों के साथ नई संसद बनने जा रही है। हम देशवासी मिलकर संसद के नए भवन को बनाएँगे।" दूसरा 8 सितंबर, 2022 का दिन था इंडिया गेट पर कभी जॉर्ज पंचम की मूर्ति होती थी, उसे हटा तो दिया गया था, लेकिन वहाँ किसकी मूर्ति लगे, यह प्रश्न वर्षों से उलझा हुआ था। उस दिन वहाँ नेताजी सुभाष चंद्र बोस की मूर्ति लगी और प्रधानमंत्री ने उसका लोकार्पण किया। यह अवसर भी असाधारण था, उसी अवसर पर उन्होंने 'राजपथ' को 'कर्तव्य पथ' बनाया। एक बहुत कीमती बात भी उन्होंने कही, गुलामी का प्रतीक राजपथ इतिहास की बात हो गई है। देश उपनिवेशवाद के एक और प्रतीक से बाहर आ गया है। स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी प्रयास कर रहे हैं कि स्वराज्य पूर्णता में प्रकट हो। इसलिए वे औपनिवेशिकता के चिह्नों को मिटाने का बीड़ा उठाए हुए हैं।[36]

विरासत पर गर्व - प्रधानमंत्री संग्रहालय का उदघाटन 14 अप्रैल, 2022 को किया गया। इस दिन का चयन भी एक अर्थ रखता है, संविधान के शिल्पी डॉ. भीमराव आंबेडकर के जन्मदिन था। प्रधानमंत्री मोदी का कहना था कि "भारत, लोकतंत्र की जननी है। भारत के लोकतंत्र की बड़ी विशेषता यह भी है कि समय के साथ-साथ इसमें निरंतर बदलाव आता रहा है। हर युग में, हर पीढ़ी में लोकतंत्र को और आधुनिक बनाने, सशक्त करने का निरंतर प्रयास हुआ है। हम तो उस सभ्यता से हैं, जिसमें कहा जाता है कि हर तरफ से नेक विचार हमारे पास आएँ! हमारा लोकतंत्र हमें यही प्रेरणा देता है"।[37] जब नवीन संसद भवन की आधारशिला रखी थी तब भी उन्होंने यह कहा था कि "दुनिया में जिसे लोकतंत्र का प्रारंभ माना जाता है, वह मैग्नाकार्टा (आजादी का महान् परिपत्र) 13वीं शताब्दी का है। लेकिन उससे पहले ही 12वीं शताब्दी में भगवान बसवेश्वर ने लोकसंसद की शुरुआत कर दी थी। 10वीं शताब्दी में तमिलनाडु के एक गाँव में पंचायत व्यवस्था का वर्णन आता है। उस गाँव में आज भी वैसे ही महासभा लगती है, जो एक हजार साल से जारी है। तब भी नियम था कि अगर कोई प्रतिनिधि अपनी संपत्ति का ब्योरा नहीं देगा तो वह और उसके रिश्तेदार चुनाव नहीं लड़ पाएँगे"।[38]

नागरिक कर्तव्य- नागरिकों का कर्तव्य देश और समाज की प्रगति का रास्ता तैयार करता है। यह मूलभूत प्रणशक्ति है। इसका सबसे बेहतर संकल्प है **संविधान दिवस** को मनाना अर्थात संविधान को जानो और उसे मानो। पहला प्रश्न यही मन मे आता है कि क्या इससे पहले सामान्य नागरिक अपने संविधान के प्रति उतना सचेत था, जितना आज है? संविधान दिवस से एक राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई है।

एकता एकजुटता - श्रीअयोध्या धाम में भव्य श्रीराम मंदिर, श्रीकाशी विश्वनाथ कॉरिडोर, श्रीसोमनाथ, श्रीमहाकाल उज्जैन, श्रीकेदार गुफा, श्रीरामानुजाचार्य की प्रतिमा, श्रीशंकराचार्य की प्रतिमा, श्रीअंबा देवी कॉरिडोर, बांग्लादेश में श्रीशक्तिपीठ, अरब में भव्य मंदिर, प्रयागराज का तीर्थक्षेत्र और संगम कुंभ से लेकर सरदार पटेल और नेताजी सुभाष तक की प्रतिमाओं के अलावा ऐसे अनेक प्रकल्प और प्रवाहकल्प हैं, जिनको लेकर, देखकर और पाकर सनातन की ध्वजा अत्यंत ऊर्ध्वगामी लहरों के साथ विश्व को आलोकित और चमत्कृत कर रही है। अब स्वदेश दर्शन के लिए 515 सर्किट का निर्माण, चार धाम एन.एच. कनेक्टिविटी, केदारनाथ पुनर्निर्माण योजना, चोरी कर विदेश भेजी गई कलाकृतियों को वापस लाना, हृदय योजना, करतारपुर साहिब कॉरिडोर, प्रसाद योजना, सम्मेद

शिखर का सम्मान जैसी अनेक परियोजनाएँ आज जिस तरह से भारत के सनातन गौरव को स्थापित कर रही हैं, वह निश्चित रूप से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के विजन और उनकी सनातन आस्था के प्रति संकल्प का ही परिणाम है।[39]

वर्तमान चुनौतियों से निकलते हुये अमृतकाल की ओर अग्रसर भारत –

आज भारत विश्व के सभी क्षेत्रों में न सिर्फ अग्रणी बनने की ओर अग्रसर है, बल्कि अपने लोकतन्त्र को जनभागीदारी के साथ आगे भी बढ़ा रहा है। लोकतन्त्र के विकास में सबसे प्रमुख या मजबूत पक्ष उसके जन विश्वास की ही होती है अर्थात अपने नेतृत्व और अपनी व्यवस्था के प्रति प्रत्येक नागरिक का विश्वास ही लोकतन्त्र की मजबूती का सबसे बड़ा सूचक होता है।[40]

आज वर्तमान भारत सरकार ने संविधान मे निहित भारतीय राज्य की "योगक्षेम" भावना को सही तथा व्यावहारिक अर्थों में चरितार्थ किया है। इसी का परितोषिक है कि गरीबो का जीवन स्तर बेहतर हुआ, आवास, बिजली, स्वास्थ्य बीमा, बैंक खाते, पेयजल, मुफ्त राशन आदि के माध्यम से वंचितों और लाभार्थियों का उत्थान हुआ ही है साथ ही सबकी हर एक वर्ग की शासन में भागीदारी भी बढ़ी है। यह कहना बिल्कुल सही ही होगा कि वर्तमान सरकार ने आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को दृढ़ निश्चय के साथ व्यावहारिक पटल मे उतारा है साथ ही व्यवस्थित और पारदर्शी तरीके से आम लोगों की बुनियादी जरूरतों को उन तक पहुँचाया है।[41] कोविड 19 की वैश्विक चुनौती से वर्तमान सरकार ने जिस ढंग से उसका सामना करते हुये एक मॉडेल प्रस्तुत किया है उसे पूरे विश्व मे सराहा गया।

वर्तमान भारत सरकार ने "आत्मनिर्भर भारत" की संकल्पना में "न सिर्फ स्वयं बल्कि सर्व समाज" की भावना और दृष्टि के साथ दुनिया के सभी देशो को साथ लेकर चलाने अर्थात "वसुधैव कुटुंबकम" की बात करती है।

"आत्मनिर्भर भारत" ने देश को नई सोच और नवाचार के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। देशवासियों के मन में यह विश्वास जगा है कि भारत अपनी क्षमताओं से सबसे आगे रहने लिए तैयार है। अमृतकाल का यह भारत सिर्फ आयात पर निर्भर नहीं, अब निर्यात में भी अग्रणी हो रहा है। आज भारत आजादी के 75 साल बाद जब देश अपनी आजादी का अमृत महोत्सव मनाकर अमृतकाल की ओर बढ़ा है, तब हमारे दूरदर्शी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 'विजन 2047', अर्थात् भारत@100 का संकल्प लेकर चलने की न सिर्फ प्रेरणा दी है, बल्कि इसे हासिल करने का विश्वास भी दिया है और यह आत्मनिर्भर भारत से ही सम्भव है यह कहना ठीक ही होगा कि यदि "विकसित भारत साध्य है तो आत्मनिर्भर भारत उसका साधन" है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. जे नंदकुमार (2022) स्वराज@75 संघर्ष भारत के स्व का सुरुचि प्रकशन: नई दिल्ली
2. http://viveknartam.blogspot.com/2024/03/reflections-on-swa-national-selfhood.html
3. जे नंदकुमार (2022) स्वराज@75 संघर्ष भारत के स्व का सुरुचि प्रकशन: नई दिल्ली पृ 16-18
4. वही

5. जे नंदकुमार (2022) स्वराज@75 संघर्ष भारत के स्व का सुरुचि प्रकशन: नई दिल्ली पृ 16-18

6. रामशंकर अग्निहोत्री, भानुप्रताप शुक्ल; (2008) राष्ट्रजीवन की दिशा दीनदयाल उपाध्याय; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृ.40-41

7. जे नंदकुमार (2022) स्वराज@75 संघर्ष भारत के स्व का सुरुचि प्रकशन: नई दिल्ली पृ 8

8. कांग्रेस सर्कुलर , द हिंदुस्तान टाइम्स, 21 जुलाई 1947

9. राकेश सिन्हा (2018) विचारों का स्वराज, भारतीय नीति प्रतिष्ठान : नई दिल्ली

10.बजरंग लाल गुप्ता (2022) पंडित दीन दयाल उपाध्याय जीवन दर्शन और समसामयिकता किताबबाले : नई दिल्ली

11.वही

12.विराट पुरुष अर्थशास्त्री नाना जी सम्पादन दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली (2017)प्रभात प्रकशन पृ 5-6

13.वही पृ 8-10

14.वही पृ 10-15

15.वही पृ 17-20

16.वही पृ 5-6

17.विराट पुरुष शिक्षाविद नाना जी सम्पादन दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली (2017)प्रभात प्रकशन : नई दिल्ली पृ 7-12

18.वही पृ 16 -20

19.वही 7-12

20.वही पृ 16-18

21.विराट पुरुष समाजशास्त्री नाना जी सम्पादन दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली (2017)प्रभात प्रकशन पृ 5-13

22.आजादी मिलने के 50 साल से अधिक समय बीतने के बाद भी देश की दुर्दशा ने नानाजी को व्यथित कर दिया था। उन्हें झकझोरकर रख दिया था। ये आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में हो रहे ह्रास से बेहद दुखी थे। ऐसे में कुछ करने को वे व्याकुल थे। दीनदयाल शोध संस्थान के माध्यम से उन्होंने सामाजिक पुनर्रचना का कार्य उठाया।

23.विराट पुरुष समाजशास्त्री नाना जी सम्पादन दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली (2017)प्रभात प्रकशन पृ 5-13

24.वही पृ 28-42

25.वही पृ 28-42

26.वही पृ 28-42

27.वही पृ 62-65

28.वही पृ 62-65

29.द इंडियन एक्स्प्रेस, 22 अप्रैल 2002 में 'Runaway Fission' शीर्षक से छपे लेख का मुख्य अंश

30.वही

31.विराट पुरुष राजनीतिज्ञ नाना जी सम्पादन दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली (2017)प्रभात प्रकशन पृ 37 -38

32.वही पृ 37 -38

33.वही पृ 39

34.युगानुकूल नवरचना, जनवरी 2003

35.अजय धावले भारत के 'अमृत काल' हेतु 'पंच प्रण' का संकल्प https://spmrf.org/bharat-ke-amrit-kaal-liy-p/ पुन:प्राप्ति 10 मार्च,2024

36.राम बहादुर राय : लोकतान्त्रिक क्रांति के प्रवर्तक प्रज्ञावान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी "शिवानंद द्विवेदी और के के उपाध्याय (2023) अमृतकाल की ओर भारत प्रभात" प्रकशन :नई दिल्ली

37.वही

38.https://pib.gov.in/PressReleseDetail.aspx?PRID=1593419

39.संजय तिवारी सांस्कृतिक गौरव की पुनर्स्थापना "शिवानंद द्विवेदी और के के उपाध्याय (2023) अमृतकाल की ओर भारत प्रभात" प्रकशन :नई दिल्ली

40.शिवानंद द्विवेदी और के के उपाध्याय (2023) अमृतकाल की ओर भारत प्रभात प्रकशन :नई दिल्ली

41.राम बहादुर राय : लोकतान्त्रिक क्रांति के प्रवर्तक प्रज्ञावान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी "शिवानंद द्विवेदी और के के उपाध्याय (2023) अमृतकाल की ओर भारत प्रभात" प्रकशन:नई दिल्ली

शिक्षा और संस्कृति का संगम : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

डॉ. प्रताप निर्भय सिंह
जनरल फेलो
भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्
नई दिल्ली

शिक्षा का सामान्य अर्थ है, सीखना और सिखाना। किन्तु मूलतः शिक्षा शब्द बहुआयामी है। शिक्षा का उद्देश्य है: व्यक्तित्व का समग्र विकास। शिक्षा केवल रूढ़िगत ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा ही नहीं अपितु बौद्धिक, सामाजिक तथा भावनात्मक विकास की पद्धति है। प्रायः शिक्षा को ज्ञान का पर्याय मान लिया जाता है, जबकि शिक्षा और ज्ञान के रूप में भिन्नता है। वर्तमान में शिक्षा को ज्ञान का माध्यम मानकर औपचारिक शिक्षा को ही शिक्षा का प्रतिमान स्वीकार कर लिया गया है। जबकि देश-काल के परिदृश्य में शिक्षा और संस्कृति के सूत्र एक दूसरे से जुड़े होते हैं। शिक्षा में सकारात्मकता जरूरी होती है, अन्यथा ऐसे होता है कि बनाने बैठे विनायक और बन गया बन्दर- विनायकं विकुर्वाणः रचयामास वानरम्।

जीवन और शिक्षा का सम्बन्ध ऐसा है कि यह दोनों समांतर रूप से सहगामी हैं, जैसे जैसे जीवन विकसित होता है वैसे वैसे शिक्षा का विकास भी होता है, जीवन की प्रथम श्वांस से अंतिम श्वांस तक मनुष्य जितनी अवधि में स्वस्थ चेतनावान रहता है उतने समय तक सीखने और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया गतिशील रहती है। सनातन काल से चली आ रही सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्य पद्धति को हस्तांतरित भी शिक्षा के माध्यम से ही किया जाता है। समय परिवर्तित होता है और उसके अनुसार कुछ सापेक्ष मूल्य भी निर्मित होते हैं परंतु सनातन मूल्य, जो किसी भी संस्कृति के मूलभूत स्वरूप अर्थात मौलिक प्रकृति को प्रगट करने वाले हैं वे शिक्षा के माध्यम से ही पल्लवित एवं पुष्पित होते हैं। पराधीनताकाल में हमारी शिक्षा प्रणाली को अवरुद्ध कर आने वाली पीढ़ी को हमारे सनातन मूल्यों से बाधित करने का प्रयास किया गया। हमारी हजारों वर्ष प्राचीन विरासत को विकृत, विनष्ट एवं विस्मृत करने का कुत्सित प्रयास किया गया।

यही कारण है कि वर्तमान नई पीढ़ी में भारत के सनातन संस्कृति और मानवीय मूल्यों के विषय में अपेक्षा के अनुरूप ज्ञान का अभाव दिखलाई देता है। नई शिक्षा नीति 2020 भारत के युवाओं को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और ऐतिहासिक गौरव से परिचित कराने, उसके संरक्षण एवं संवर्धन करते हुए नए एवं समर्थ भारत के निर्माण की महत्वपूर्ण पहल है।

ISSN: 2583-391X

भारतीय संस्कृति में शिक्षा का स्वरूप व्यापक है। भारतीय दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य है सर्वांगीण विकास अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास या रूपान्तरण। शिक्षा केवल सूचनाओं का संग्रहण नहीं है और न एक विषय-विशेष, शिल्प, कला या तकनीक आदि का सीमित ज्ञान ही है। शिक्षा निर्माण की सतत् चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके दो स्थूल बिन्दु हैं- ज्ञान व विज्ञान, अर्थात् भौतिक विज्ञान और भावात्मक व आध्यात्म ज्ञान, जिन्हें उपनिषदों में विद्या और अविद्या कहा गया है। व्यावहारिक व सकारात्मक शिक्षा ही मनुष्यत्व या मानवीयता का मूल आधार है।

ऐसी शिक्षा ही जीवन को चरितार्थता की ओर ले जाती है जो मनुष्य में निहित उसकी पूर्णता को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो। माना जाता है कि शिक्षा सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था का आधार है, शिक्षा के बिना न व्यवस्था-तंत्र का निर्माण सम्भव है और न ही व्यक्तित्व का विकास। हमारे पूर्वजों ने अनेक वर्षो के अनुसंधान के पश्चात जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुपम आविष्कार किये थे, जिससे मनुष्य अपनी जीवन ऊर्जा के साथ संतुलन में रहकर संपूर्ण मानव के कल्याण हेतु अपने जीवन का सदुपयोग करें। प्राचीन काल में भारत विश्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित था, नई शिक्षा नीति 2020 भारत को वर्तमान आधुनिक तकनीकी युग में नॉलेज पावर के रूप में प्रतिष्ठित करने की प्रतिबद्धता को समर्पित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारतीय इतिहास की ऐसी पहली शिक्षा नीति है जिसका आधार भारतीय संस्कृति है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो विचार, बौद्धिकता और कार्य व्यवहार से भारतीय हों। एनईपी 2020 का लक्ष्य "भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति" बनाना है।

संस्कृति और शिक्षा एक-दूसरे के पर्याय हैं। संस्कृति का काम है- संस्करण अर्थात् परिष्कार करना। यही काम शिक्षा भी करती है। समाज की रचना में भी संस्कृति का विशेष योगदान रहता है। किसी भी सामाजिक संरचना को समझने के लिए संस्कृति एक आवश्यक तत्व है। संस्कृति समाज का प्राण है। संस्कृति का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन शैली से होता है। जबकि सभ्यता संस्कृति का भौतिक पक्ष है। इस प्रकार प्रत्येक संस्कृति में यह व्यवस्था होती है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा शिशुओं तथा बालकों को सांस्कृतिक शिक्षा प्रदान की जाये, जिससे कि वे अपनी संस्कृति के अनुसार जीवन व्यतीत कर अपने समाज और राष्ट्र की निधि बनें।

संस्कृति हमें देश की परिस्थितियों, समाज और समय की धारा के अनुरूप चलने और जीवन-यापन की शिक्षा प्रदान करती है। मुख्य बात यह है कि शिक्षा, व्यक्तित्व और संस्कृति के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। संस्कृति मानव मूल्यों एवं जीवन की शिक्षा है, व्यक्ति को सांस्कृतिक विघटन से बचाने के लिए सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा देना जरूरी है। शिक्षा ही सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाती है। एक शिक्षित समाज अपना दायित्व स्वयं संभाल लेता है।

भारत में शिक्षा का अर्थ ज्ञान को प्राप्त कर समस्त प्रकार के दुखों एवं बंधनों से मुक्त होकर आनंदमय जीवन जीने की कला में निहित है। प्राचीन काल में भारत वर्ष में विश्व के सभी देशों से सत्य के जिज्ञासु शिक्षा प्राप्त करने आते थे। भारतीय ज्ञान परम्परा में अध्यात्मिक

विषयों के साथ-साथ लौकिक जीवन के आधारभूत विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्योतिष शास्त्र, वास्तु शास्त्र, शिल्पकला, भवन निर्माण, काष्ठ कला, चित्रकला और नृत्य कला, नाट्यशास्त्र, नृत्य कला, संगीत, चिकित्सा विज्ञान, धातु विज्ञान, राजस्व विज्ञान, रस विज्ञान, राजनीति शास्त्र, अर्थ नीति शास्त्र, खगोल शास्त्र, युद्ध कला-सैन्य विज्ञान, औषधि विज्ञान, कृषि विज्ञान, प्रकृति एवं पर्यावरण, नौसेना विज्ञान, जहाज और वायुयान निर्माण कला, रथ इत्यादि बनाने का विज्ञान जैसी अनेक परम्पराओं का विवरण मिलता है। वर्तमान भारत में अनेक स्थानों पर इन प्राचीन कलाओं से सम्बन्धित दृष्टांत और उदाहरण आज भी उपलब्ध हैं। भारत की ज्ञान परम्परा को आधुनिक विज्ञान के साथ समाहित कर उसे लोक कल्याण के लिए कैसे उपयोग में लिया जाए, नई शिक्षा नीति उसकी अनुशंसा करती है। दुर्भाग्य से आधुनिक शिक्षा प्रणाली ज्ञान और विज्ञान को मात्र जीविकोपार्जन का साधन मानते हुए उपाधि को नौकरी पाने का साधन मात्र समझने का पर्याय बन गई थी, किंतु नई शिक्षा नीति मानव को सुसंस्कृत एवं निष्ठावान राष्ट्रीय नागरिक बनाने की दिशा में किया गया एक महत्वपूर्ण प्रयास है। नई शिक्षा नीति में केवल परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना, अंकों के आधार पर दक्षता सूची निर्मित कर लेना पर्याप्त नहीं है, मूल्यांकन और आकलन की नई प्रविधियां तथा 360 डिग्री पर्यवेक्षण का आह्वान शिक्षा प्रणाली को नए रूप में संगठित करेगा।

भारत के स्वत्व को समाप्त कर मैकाले द्वारा दी गई शिक्षा नीति में भारत में शिक्षा है, लेकिन शिक्षा में भारत ही विलुप्त है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारत में शिक्षा तो होगी, साथ ही शिक्षा में भारत के स्वत्व दर्शन भी होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत के दर्शन, संस्कृति, धर्म और आधुनिककाल में भविष्योन्मुखी भारत की आवश्यकता के अनुरूप है, जो बौद्धिक परिवर्तन का आधार बनेगी।

पिछले अनेक वर्षों की पराधीनताकाल में भारतवर्ष अपने स्वत्व की अवधारणा को भूल चुका है, नई पीढ़ी को अपनी प्राचीन गौरव और प्राचीन विरासत का अपेक्षित ज्ञान नहीं है, नई पीढ़ी के मन में अपनी संस्कृति और मातृभूमि के प्रति गौरव बोध विकसित करने का महत्वपूर्ण कारक है शिक्षा नीति-2020। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत के आधार पर समृद्ध भारत का निर्माण करने वाली शिक्षा नीति है। स्वभाषा, स्वबोध और स्वसंस्कृति से परिष्कृत होकर प्रत्येक भारतीय 'स्वाधीनता से स्वतन्त्रता' का नया अध्याय लिख सकता है। भारत को वास्तव में हम भारत के रूप में विकसित करें, इसकी पहचान भारत के रूप में हो इण्डिया के रूप में नहीं, स्वतंत्रता के वर्षों बाद ऐसी पहल करने वाली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 है। भारत को विकासशील राष्ट्र से विकसित राष्ट्र बनाने के लिए जिस प्रकार के नागरिकों की आवश्यकता है उस प्रकार के मौलिक चिंतन वाले संस्कृतिनिष्ठ, कुशल एवं क्षमतायुक्त युवाओं का निर्माण करना राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारत की समृद्ध विविधता और संस्कृति के प्रति सम्मान रखते हुए और साथ ही देश की स्थानीय और वैश्विक संदर्भ में आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए भारतीयों की भूमिका की चर्चा की गई है। इस शिक्षा नीति में इस बात की विशेष अनुशंसा की गई है कि भारत के युवाओं को भारत के बारे में और इसकी विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी

आवश्यकताओं सहित यहां की अद्वितीय कलाओं, भाषाओं और ज्ञान परम्पराओं का ज्ञान, राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान जैसे मूल्यों का ज्ञान भारत के विकास के लिए अत्यंत अनिवार्य है।[1]

प्राचीन काल में भारत विश्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित था यह भारतीय संस्कृति का प्रमुख गौरव बोध है। आने वाले समय में भी भारत संपूर्ण विश्व में अपने नेतृत्व एवं ज्ञान से कल्याणमयी विश्व की परिकल्पना "वसुधैव कुटुंबकम" को साकार करने वाले राष्ट्र के रूप में विकसित हो उस दृष्टि से भारत को वैश्विक अध्ययन के गंतव्य के रूप में बढ़ावा देने पर भी इस शिक्षा नीति में प्रयास किया गया है। भविष्य मे भारत के विश्वविद्यालय प्राचीन भारत के विश्वविद्यालयों के समान ही संपूर्ण विश्व के लिए न केवल ज्ञान का केंद्र बने अपितु वैश्विक एकता का मार्ग भी प्रशस्त करें। भारतीय विश्वविद्यालयों के वैश्विक संस्थानों के साथ अनुसंधान, सहयोग और छात्रों के आदान-प्रदान जैसे विशेष प्रयासों के माध्यम से इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाए इस हेतु से भी भारतीय विश्वविद्यालयों को तैयार करने की अनुशंसा नई शिक्षा नीति 2020 में की गई है।[2]

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विश्व को क्या अनुदान रहा है?, हमारे पूर्वजों ने किस ज्ञान परम्परा को हमें सौंपा है जिसे विस्मृत कर दिया गया?, हमारे इतिहास के ऐसे कौन से गौरव बिंदु मान हैं जिन्हें षड्यंत्र रच कर इतिहास में जगह नहीं दी गई अथवा विकृत कर दिया गया?, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे विश्वविद्यालयों की भूमि की ज्ञान परम्परा कैसे विलुप्त कर दी गयी? ऐसे प्रश्नों का अन्वेषण कर विद्यार्थी स्वयं नए भारत को गढ़ेंगे। विभिन्न क्षेत्रों में विश्व को नेतृत्व देने वाले भारतीय विद्वानों जैसे चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि, माधवाचार्य, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, मैत्रेयी आदि अनेक विशिष्ट विद्वजनों[3] के द्वारा निर्मित भारत बोध को संजोने का व्यापक प्रयास किया गया है।

विश्वविद्यालय की प्राचीनतम व्यवस्था को देने वाले देश इस महान राष्ट्र भारत में विश्वविद्यालय को वैश्विक केंद्र के रूप में विकसित करना शिक्षा नीति 2020 का एक प्रमुख अंग है, निश्चित रूप से यह प्रयास समावेशी और विविधतापूर्ण संस्कृतियों का विश्वविद्यालय स्तर पर संगठित दृष्टि से अध्ययन करने में सहायक सिद्ध होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति विभिन्न विषयों में विशिष्ट विद्वानों एवं विशेषज्ञों को विश्वविद्यालय तथा शिक्षण केंद्रों में आमंत्रित करने का अनुमोदन करती है जो अपने अनुभव के आधार पर अपने द्वारा अर्जित ज्ञान को विद्यार्थियों को हस्तांतरित कर सकें। विशेष रूप से किसी भी दक्षता से सम्बन्धित कुशल व्यक्तियों को आने वाली पीढ़ी को हस्त कौशल एवं आर्थिक उपार्जन के कौशल से सम्बन्धित व्यवहारिक ज्ञान कराने का अनुमोदन भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में किया गया है, भारत की वानप्रस्थ और संन्यास परम्परा में भी सेवा भाव से शिक्षण की परम्परा विद्यमान थी। भारत की सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विरासत योग-आयुर्वेद को शारीरिक व्यायाम की सीमा से बाहर निकाल कर व्यक्तित्व विकास के साथ जोड़ते हुए सामाजिक जीवन में इसके उपयोग जैसे विविध विषयों पर चर्चा परिचर्चा के माध्यम से अनुप्रयोग करने की अनुशंसा नवीन पाठ्यक्रमों में की जानी है।

भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक होते हैं, कोई भी संस्कृति भाषा और बोली के माध्यम से ही संचारित और विस्तारित होती है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होने में भाषा-बोली और साहित्य तथा परम्पराओं का बड़ा महत्व है, इस दृष्टि से नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय भाषाओं को महत्व प्रदान करती है और विशेष रूप से मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने को महत्वपूर्ण मानती है। जब तक भारत स्वयं की भाषा में स्वयं की अभिव्यक्ति नहीं करेगा तब तक 'स्व' केन्द्रित कैसे बनेगा? भारत में शास्त्रीय तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, और ओडिया सहित अन्य शास्त्रीय भाषाओं में एक अत्यंत समृद्ध साहित्य है, इसी के साथ संस्कृत, पाली, फारसी, प्राकृत में भी अकूत ज्ञान का भण्डार है। भावी पीढ़ी के सुख और समृद्धि के लिए इस ज्ञान परम्परा का संरक्षित किया जाना भी आवश्यक है और इसी के साथ उसका विस्तार नई पीढ़ी में करना भी। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की विविधता पूर्ण संस्कृति विविध भाषाओं के समृद्ध साहित्य में निहित है। नई शिक्षा नीति में ऑनलाइन मॉड्यूल के रूप में अनुभवात्मक और अभिनव एप्रोच के माध्यम से इस विविध प्रकार के ज्ञान को सभी के लिए उपलब्ध कराने की दिशा में प्रयास करने की अनुशंसा है।[4]

यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के संयोजन, शिक्षा व्यवस्था के नियमन और गवर्नमेंट सहित सभी सम्बंधित संगठनों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है।[5] राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में ही निहित है कि यह शिक्षा भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली है जो सभी को उच्चतर गुणवत्ता शिक्षा उपलब्ध कराकर अपने समाज को वैश्विक ज्ञानमहाशक्ति बनाकर भारत को एक जीवंत और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगी।[6]

यह नीति, प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञानार्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्मज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था।[7]

अभी तक बालक की स्कूली शिक्षा कक्षा एक से प्रारंभ होती थी, नई शिक्षा नीति इस बात को समझती है कि बालक की यह शैशवावस्था अपने पर्यावरण-परिवेश के प्रति जागरूकता के सन्दर्भ में उसके विकास का एक महत्वपूर्ण काल होता है इस दृष्टि से 5 वर्ष की आयु से पूर्व ही बच्चे को 'बाल वाटिका' के माध्यम से खेल आधारित शिक्षण पर बल दिया गया है जिसमें संज्ञानात्मक, भावनात्मक और शारीरिक क्षमताओं और प्रारंभिक साक्षरता और संख्या ज्ञान विकसित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।[8]

बालक अपने परिवेश और अपने साथियों के साथ सामंजस्य रखते हुए भी सीखता है, भारतीय संस्कृति का यह महत्वपूर्ण पहलू है कि हम सब एक बड़ी व्यवस्था का अंश हैं, सहास्तित्व हमारी संस्कृति का प्रेरक तत्व है, अपनी संस्कृति में परस्पर पूरक बनकर

अपने जीवन को चलाने में विश्वास रखा जाता है, कक्षा के भीतर बालक विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से अपने साथियों के साथ रहते हुए शिक्षकों की देखरेख में सीखेगा, अनुभवी वॉलिंटियर्स इस प्रक्रिया में सहभागिता करेंगे, कक्षा विद्यालय को सामुदायिक केंद्र के रूप में विकसित किया जायेगा, यह प्रयास भारत के सामुदायिक मूल्य को स्थापित करता है।[9]

भारतीय संस्कृति में शिक्षा पर सभी का समान रूप से अधिकार रहा है, नवीन शिक्षा नीति भी समावेशी शिक्षा के अंतर्गत समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा उपलब्ध कराने की अनुशंसा करती है। भारतीय संविधान की प्रवेशिका में उल्लेखित लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने के लिए समतामूलक और समावेशी शिक्षा परम आवश्यक है। भारतीय शिक्षा नीति देश के सभी बालकों की शिक्षा प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए प्रस्ताव देती है।[10] किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का प्रवाह उसके ज्ञान भंडार, उस राष्ट्र की संचित ज्ञान निधि, उसके हस्तांतरण तथा उसके अध्ययन पर निर्भर करता है, भारत में स्वाध्याय की एक बड़ी परम्परा रही है जो पिछले कुछ वर्षों में क्षीण हुई है, सांस्कृतिक धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए शैक्षणिक केंद्रों के माध्यम से स्वाध्याय की इस परम्परा को पुनर्जीवित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। नई शिक्षा नीति के माध्यम से सभी भारतीय और स्थानीय भाषाओं में रुचिकर और प्रेरणादायक बाल साहित्य और सभी स्तर के विद्यार्थियों के लिए स्कूल और स्थानीय पुस्तकालयों में बड़ी मात्रा में पुस्तकें उपलब्ध कराने की अनुशंसा की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर पढ़ने की संस्कृति के निर्माण हेतु सार्वजनिक और स्कूल पुस्तकालयों के विस्तार, डिजिटल पुस्तकालयों की स्थापना और गांवों में सामुदायिक पुस्तकालय की स्थापना इत्यादि को लेकर राष्ट्रीय पुस्तक संवर्धन नीति तैयार किए जाने की अनुशंसा की गई है।[11]

संस्कृति संवर्धन के लिए अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों के रूप में पुस्तकालयों का निर्माण शिक्षा और संस्कृति के अद्भुत संगम केंद्र की स्थापना ही है। भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा जीवन भर चलने वाली विशिष्ट प्रक्रिया है, नई शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा को संपूर्ण जीवन चलने वाली संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करती है। भारतीय जीवन प्रणाली ज्ञान को अखंड रूप में स्वीकार करती है, हम अणु में विभु का दर्शन करते हैं, हमारी संस्कृति का यही आधार है कि इस संपूर्ण ब्रह्मांड में सब कुछ एक दूसरे से जुड़ा हुआ है और एक ही तत्व की अभिव्यक्ति है, इसलिए नई शिक्षा नीति ज्ञान को कुछ विषयों के अध्ययन तक सीमित नहीं रखती है, भारत की यह पहली शिक्षा नीति है जो किसी भी विद्यार्थी को अपने पाठ्यक्रम में अनेक विकल्पों का लचीलापन उपलब्ध कराती है, इसके साथ ही अपने राष्ट्र की बहुविध बोली भाषाओं के साथ साथ मूल रूप से अपनी मातृभाषा में सीखने और अभिव्यक्ति देने का मार्ग प्रशस्त करती है।[12] भारत एक राष्ट्र के रूप में हजारों वर्ष प्राचीन राष्ट्र है, भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से आज के भारत को 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की सांस्कृतिक अवधारणा का पोषण बालकों में करने की दृष्टि से कक्षा 6 से 8 में 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' जैसे प्रोजेक्ट को रखने की नई शिक्षा नीति ने अनुशंसा की है।[13]

किसी भी शिक्षा पद्धति का उत्कृष्ट रूप होता है उसके द्वारा हस्तांतरित किए गए ज्ञान का सामाजिक जीवन में उत्कृष्ट रूप से निष्पादन किया जाना। अभी तक भारत की शिक्षा प्रणाली सीखने की अपेक्षा रटने पर तथा व्यवहारिक और दक्षता-कुशलता की अपेक्षा

परीक्षा पास करने पर अधिक आधारित थी। शिक्षा को ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा नौकरी प्राप्त करने का साधन मान लिया गया था। नई शिक्षा नीति ने दैनिक और सामाजिक जीवन में विद्यार्थियों को अधिक सक्रिय करने की दृष्टि से कुछ व्यक्तिगत एवं सामाजिक कौशल प्रबंधन की ओर ध्यान दिलाया है जिनमें से प्रमुख हैं: उत्पादक सोच, वैज्ञानिक स्वभाव और साक्ष्य आधारित सोच, रचनात्मकता और नवीनता, सौंदर्यशास्त्र और कला की भावना, मौखिक-लिखित अभिव्यक्ति और संवाद, स्वास्थ्य और पोषण, शारीरिक शिक्षा, फिटनेस और स्वास्थ्य, खेल, सहयोग और टीम वर्क, समस्या को हल करने और तार्किक चिंतन की क्षमता, व्यवसायिक एक्सपोजर और कौशल, गणितीय सोच, कोडिंग और कंप्यूटेशनल चिंतन, नैतिकता और नैतिक तर्क, मानव और संवैधानिक मूल्यों का ज्ञान और अभ्यास, लिंग संवेदनशीलता, मौलिक कर्तव्य, नागरिकता कौशल और मूल्य, भारत का ज्ञान, पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता, स्थानीय समुदायों राज्यों देश और दुनिया का समय सामान्य ज्ञान इत्यादि। इसी के साथ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजाइन थिंकिंग, हॉलिस्टिक हेल्थ, ऑर्गेनिक लिविंग. वैश्विक नागरिकता शिक्षा जैसे विषयों पर भी कार्य करने की अपेक्षा की गई है।[14] भारत के वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से समृद्ध नई पीढ़ी के ज्ञान संस्कार का खाका है यह शिक्षा नीति।

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की युवा पीढ़ी को भारतमय बनाना, उन्हें भारत की संस्कृति का बोध कराना और भारतीय ज्ञान परम्परा को वर्तमान वैज्ञानिक और आधुनिक तकनीकी परिदृश्य में अनुप्रयुक्त करना नई शिक्षा नीति 2020 का केंद्रीय दर्शन कहा जा सकता है। वर्तमान काल में आधुनिक भारत और उसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान किस प्रकार से सहायक हो सकता है तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि क्षेत्रों में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं को हमारे पुरातन ज्ञान को साथ लेकर आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का क्रियान्वयन किस प्रकार से किया जा सकता है? नई शिक्षा नीति 2020 में इसका चिंतन किया गया है। समग्र शिक्षण के रूप में भारतीय ज्ञान प्रणाली को आदिवासी ज्ञान एवं सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक विधियों सहित सीखने और गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल के साथ-साथ शासन, राजव्यवस्था आदि विषयों को भी सम्मिलित किए जाने की अनुशंसा है। प्राचीन और आधुनिक भारत के प्रेरणादायक व्यक्तित्वों पर वीडियो वृत्तचित्र और छात्रों को सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों के हिस्से के रूप में देश के विभिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक दौरे पर जाने की अनुशंसा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के द्वारा भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी उत्थान के लिए दिए गए दिशानिर्देशों में से एक प्रमुख दिशा निर्देश है।[15]

भारतीय संस्कृति में किसी भी व्यक्ति का आकलन उसकी विभिन्न क्षमताओं, ज्ञान, कौशल एवं उसके आचरण से सम्बन्धित मांगों से तय किया जाता है, इसलिए नई शिक्षा नीति में किसी भी बालक का आकलन केवल लिखित परीक्षा के आधार पर नहीं वरन शिक्षण काल में उसके व्यवहार, बौद्धिक क्षमता, सामाजिक सम्बन्ध, किसी कार्य विशेष को करने की उसकी दक्षता और कौशल तथा उसके चरित्र आदि को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाने की अनुशंसा है। इस दृष्टि से भारत के सभी मान्यता प्राप्त स्कूल बोर्डों के लिए विद्यार्थी आकलन एवं मूल्यांकन के लिए मानदंड मानक और दिशा निर्देश बनाने जैसे कुछ मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए

राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र परख स्थापित किए जाने का भी प्रस्ताव दिया गया है।[16] भारतीय जीवन दर्शन में गुरु एवं शिक्षक का स्थान ईश्वर के तुल्य माना गया है, पिछले कुछ वर्षों में छात्रों और शिक्षकों के बीच के सम्बन्ध का अवमूल्यन हो गया प्रतीत होता है, जिसके अनेक कारण हो सकते हैं, परंतु शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य उत्कृष्ट संवेदनशीलता और गुणवत्तापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से शिक्षकों की भर्ती और पदस्थापन प्रक्रिया को भी विकसित किए जाने की अनुशंसा की गई है तथा शिक्षक अपने समुदाय से जुड़ा रहे और विद्यार्थियों का रोल मॉडल बने, जिसके माध्यम से भारत अपनी हजारों वर्षों प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित कर सके, उस दिशा में भी भारतीय शिक्षा नीति 2020 विशेष प्रकार से शिक्षकों के चयन एवं प्रशिक्षण की अनुशंसा करती है।[17] स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सशक्त, समर्थ और समृद्ध राष्ट्र बनाने की दिशा में उठाया गया कदम है, यह भारत को 'स्व' से सिंचित कर स्वाधीनता से स्वतन्त्रता की ओर उस यात्रा का शुभारम्भ है जो भारत को विश्वगुरुत्व की ओर लेकर जाएगी।

संदर्भ ग्रंथसूची :-

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-5
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-62-63
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-4
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-22
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-4
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-8
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-4
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-10
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-12
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-38
11. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-13
12. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-19
13. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-21
14. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-23
15. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-24
16. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-28
17. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय- भारत सरकार, पृष्ठ-31

वाल्मीकि रामायण में वर्णित राष्ट्रीय भावना

डॉ. शशि शर्मा

सहायक प्राध्यापक
दौलत राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण से प्रत्येक मनीषी परिचित है। चौबीस हजार श्लोकों वाले इस विशालकाय उपजीव्य काव्य में उन्होंने अपने चरितनायक श्रीराम के समग्र जीवनचरित का भव्य एवं हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है। रामायण की मुख्य घटना है- "युद्ध में श्रीराम की रावण पर विजय।" यदि सूक्ष्म अन्वेषण किया जाए तो ज्ञात होता है की रामायण में वर्णित संघर्ष व्यक्तिविशेषों के मध्य हुआ संघर्ष नहीं था बल्कि "दो संस्कृतियों का संघर्ष" है जिन्हें आर्यसंस्कृति और अनार्य संस्कृति कह सकते हैं। यह दो प्रजातियों का संघर्ष है, जो मानवप्रजाति एवं राक्षसप्रजाति के नाम से प्रसिद्ध है। इस संघर्ष में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान एवं वानरश्रेष्ठ आर्यदेशका प्रतिनिधित्व कर रहे थे, तथा रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद (इन्द्रजित्) ताडका, खर, दूषण, मारीच, विराध, शूर्पणखा आदि राक्षसगण अनार्यदेश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

राष्ट्र तथा राष्ट्रीय भावनाः भूमि, जन और जन की संस्कृति के समन्वय से राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित होता है। भूमि के भौतिक रूप, सौन्दर्य, उपयोग और माहात्म्य की पहचान तथा उसके प्रति मातृभावना, जन-जन के प्रति मातृभावना पारस्परिक सहिष्णुता तथा समन्वयशीलता राष्ट्रीयता की कुंजी है। अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवन दर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का जो एक नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है उसे ही हम राष्ट्रीय भावना की संज्ञा देते है।

आदिकवि की संवेदना राष्ट्र की समृद्धि के प्रति पर्याप्त रूप से जागरूक है। प्रजा के योग-क्षेम का विवरण प्रस्तुत कर राजा दशरथ के राज्यकाल का समूचा लेखा-जोखा दिया गया है। बालकाण्ड में कहा गया है कि कोसल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है, जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धनधान्य से सम्पन्न, सुखी और समृद्धि शाली है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की एक नगरी है, जो समस्त लोकों में विख्यात है। उस पुरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था।[1] उसी पुरी को धर्म और न्याय के बल से अपने महान् राष्ट्र की वृद्धि करने वाले राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेषरूप से बसाया था।[2]

अयोध्यापुरी में सभी स्त्री - पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्न रहने वाले तथा शील और सदाचार की दृष्टि से महर्षियों की भांति निर्मल थे।[3] महर्षि वाल्मीकि ने राजा दशरथ के शासनकाल में अयोध्या और वहाँ के नागरिकों की उत्तम स्थिति का वर्णन कर कुशल

शासक व सुदृढ राष्ट्र को बताया है। अयोध्याकाण्ड में श्रीराम के द्वारा भरत से कुशल प्रश्न पूछने के बहाने राजनीति के आवश्यक तथ्यों को ही स्पष्ट किया। उन्होंने कहा- "जो उत्तम कुल में उत्पन्न, विनय सम्पन्न, बहुश्रुत, किसी के दोष न देखने वाले तथा शास्त्रोक्त धर्मों पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले हैं, उन पुरोहित का तुमने पूर्णतः सत्कार किया है? मन्त्रीगण की नियुक्तियों के विषय में प्रश्न किया किया "क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मन्त्री बनाया है?[4]

वाल्मीकि रामायण में राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का उल्लेख है। यह शासन प्रणाली दो प्रकार की कही गई है। एक संवैधानिक राजतन्त्र (प्रजातन्त्रात्मक) तथा दूसरी राजतन्त्रात्मक। राजा दशरथ व श्रीराम का राज्य संवैधानिक राजतन्त्र था और रावण का राज्य राजतन्त्रात्मक शासन कहा जा सकता है। मनुष्य के संगठित जीवन बिताने से राजनीतिक संगठन का प्रारम्भ होता है। रामायण के समय तक राजनीतिक संगठन का रूप स्पष्ट हो चुका था। राज्य की सीमा निर्धारित हो चुकी थी। रामायण में राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई ग्राम प्रतीत होती है। ग्राम, महाग्राम, घोषपुर और इसके अतिरिक्त भूमि-पर्वत, वन, खानें, दुर्ग आदि सभी का संगठित रूप राष्ट्र के स्वरूप को करता है। रामायण में राज्य के लिए जनपद, विषय, देश, पुरी का उल्लेख प्राप्त होता है।

रामायण काल में राज्य छोटे-छोटे थे। बड़े नगर ही राज्य बन गए थे। राज्यों के आस-पास के छोटे-बड़े गाँव भी इनमें सम्मिलित हो गए थे, जैसे अयोध्या के समीपस्थ नन्दीग्राम भी कौशल राज्य की सीमा के अन्तर्गत था। उत्तरी भारत में आर्यों के राज्य थे। इनका क्षेत्र हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य भाग का भूभाग था। इसमें मिथिला, काशी, कौशल, केकय, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, विशाला, अंग बंग, मगध, मत्स्य आदि स्वतन्त्र राज्ये थे। कौशल राज्य ही उत्तर भारत में सबसे बड़ा राज्य था। राजा दशरथ ने रानी कैकयी से कहा था कि "द्राविण, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, बंगाल, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और कौशल आदि इनमें उत्पन्न वस्तुएँ, धनधान्य सभी हमारे अधीन हैं - इनमें से जो भी मन में हो, वह मुझसे माँग लो।[5] राजा दशरथ के इस कथन से संकेत प्राप्त होता है कि उनके अधीन अनेकों राज्य रहे होंगे। विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में वानरों और राक्षसों के राज्य थे। विन्ध्य और शिवाला पर्वत के मध्य में दण्डकवन था यहाँ कुछ सन्यासियों को छोड़कर राक्षसों का निवास था। इसी दण्डकारण्य के दक्षिण में किष्किन्धा राज्य था। रामायण में प्रमुख रूप से कौशल, किष्किन्धा और लंका राज्यों का ही विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

विकसितसभ्यता के समान ही उत्तरी भारत की आर्यों की संस्कृति भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी। तत्कालीन समाज के लोगों के आचार विचार शुद्ध एवं परिपक्व थे। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक समस्त संस्कार प्रचलित थे। समाज में यज्ञानुष्ठान किये जाते थे। प्रजा सन्तुष्ट, सत्यवादी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, आस्तिक, वदान्य, अतिथिपूजक थे। वानरों की संस्कृति आर्यों की ही संस्कृति थी। वानरगण दम, शम, दान, क्षमादि, नैतिक गुणों से युक्त, सत्यप्रतिज्ञ थे। इनमें भी संस्कार तथा यज्ञादि प्रचलित थे। राक्षसगण प्रारम्भिक समय में श्रेष्ठ तपस्वी थे। वे धर्मज्ञ, राजधर्मविशारद शास्त्रज्ञ थे। तपश्चर्या से वरदानों एवं सिद्धियों को प्राप्त के पश्चात् ये अभिमानी एवं क्रूरकर्मा हो

गये थे। धर्म का उल्लङ्घन करने लगे थे। इस तरह आर्या-संस्कृति के विपरीत आचरण करते हुए वे मायावी बनकर विलास में लिप्त रहने लगे।

बालकाण्ड के 19वं सर्ग में विश्वामित्र का महाराज दशरथ के पास आना तथा सिद्धि के निमित्त किये जाने वाले अनुष्ठान में इच्छारूपधारी मारीच और सुबाहु के यज्ञवेदी में रक्त और मांस की वर्षा करना आदि विघ्नों को बताना तथा ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को राक्षसों के विनाश हेतु माँगना। यह विश्वामित्र-दशरथ संवाद इस तथ्य को बताता है कि अपने आर्य देश में प्रवेश कर मारीच-सुबाहु और ताडका जैसे राक्षस जातीय अनार्यों का आर्य संस्कृति को विनष्ट करने का प्रयास। किन्तु राक्षसों से आर्य-संस्कृति की रक्षा हेतु प्रयास किया जाना। श्रीराम ने विराध नाम राक्षस का वध इसीलिए किया था क्योंकि प्रतिदिन ऋषियों के माँस का भक्षण करता था।[6] वह आर्य संस्कृति का शत्रु था।
अरण्यकाण्ड के 6 सर्ग में शरभङ्ग मुनि के आश्रम में वानप्रस्थ महात्माओं ने राक्षसों के अत्याचार से अपनी रक्षा के लिए श्रीराम से प्रार्थना की।[7] पम्पा सरोवर, तुङ्गभद्रा, मन्दाकिनी नदियों के तट तथा चित्रकूट पर्वत के किनारे निवास करने वाले ऋषियों-महर्षियों का राक्षसों द्वारा संहार किया जा रहा था। आर्यदेशीय वानप्रस्थ मुनियों के प्रति अनार्यदेशीय राक्षसों के निर्मम प्राणघातक अत्याचारों के परिणाम को श्रीराम ने प्रत्यक्ष रूप से देखा तभी उन्होंने आर्यदेश से अनार्यों का समूलोन्मूलन करने की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कहा "तपोधनो ! मैं तपस्वी मुनियों से शत्रुता रखने वाले उन राक्षसों का युद्ध में संहार करना चाहता हूँ। आप सब महर्षि भाई लक्ष्मण सहित मेरा पराक्रम देखें"।[8]

इसी प्रकार अनार्य-संस्कृति भी आर्य-संस्कृति की विरोधी थी। इस प्रसंग में शूर्पणखा ने भी खर राक्षस को राम-लक्ष्मण के विरुद्ध यही कहकर उत्तेजित किया था कि वे दोनों मानव प्रजाति के हैं, आर्य संस्कृति से सम्पन्न तथा राक्षस प्रजाति के शत्रु हैं। शूर्पणखा के कथन इस प्रकार है-' वन में दो तरूण पुरूष आये हैं, जो देखने में सुकुमार, रूपवान् और बलवान हैं। इन दोनों ने वल्कल वस्त्र और मृगचर्ग पहना हुआ है। फल और कन्दमूल उनका भोजन है। वे जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। रणभूमि में मैं उनका रक्त पी सकूँ, यह मेरी इच्छा है, जो तुम्हारे द्वारा पूर्ण की जानी चाहिए।[9] वह खर के प्रति कठोर वचन कहती है कि राम और लक्ष्मण मनुष्य है, यदि उन्हें भी मारने की तुम में शक्ति नहीं है तो तुम्हारे जैसे निर्बल और पराक्रमशून्य राक्षस का दण्डकारण्य में रहना कैसे संभव हो सकता है? खर भी शूर्पणखा के वचनों से उत्तेजित होकर कहता है कि "मैं पराक्रम की दृष्टि से राम को कुछ भी नहीं मानता। वह अपने दुष्कर्मों से आज मेरे हाथों से प्राणों से हाथ धो बैठेगा।"[10]

जनस्थान में निवास करने वाले राक्षसगण का श्रीराम लक्ष्मण द्वारा संहार देखकर शूर्पणखा रावण के पास गयी तथा राक्षस प्रजाति की दुहाई देकर मानवप्रजाति से प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करती है। राक्षसराज रावण भी उसकी तर्कयुक्त बातों से प्रभावित होकर राक्षस संस्कृति की मान-मर्यादा को श्रेष्ठ दिखाने के लिए श्रीराम की भार्या सीता हरण की योजना बनाकर, मारीच राक्षस को स्वर्ण का कपटमृग बनने को बाध्य करता है। सुग्रीव के ज्येष्ठ भ्राता वाली के द्वारा लगाये हुए आपेक्षों का उत्तर देने के प्रसंग में किष्किन्धाकाण्ड

में श्रीराम द्वारा कहा गया है कि "पर्वत, पवन और काननों युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की है, अतः वे यहाँ के पशु-पक्षी और मनुष्यों पर दया करने तथा दण्ड देने के अधिकारी है।[11] धर्मात्मा राजा भरत इस पृथ्वी का पालन करते हैं। उनकी ओर से हमें और दूसरे राजाओं को यह आदेश प्राप्त है कि जगत् में धर्म के पालन और प्रसार के लिये यत्न किया जाए इसीलिए हम धर्म का प्रचार करने की इच्छा से सारी पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं। भरत की आज्ञा से धर्ममार्ग से भ्रष्ट पुरुष को विधिपूर्वक दण्ड देते हैं।[12] श्रीराम के कथन से तात्पर्य स्पष्ट होता है कि दक्षिणभारत की समुद्रपर्यन्त समस्त भूमि अयोध्या नरेश के साम्राज्य के अन्तर्गत आती होगी।

रामभक्त हनुमान समुंद्र लाँघते समय उड़ान में विघ्न डालने वाली सुरसा को अपने अनुकूल करने के लिए यही तर्क देकर समझाते हैं "हे सुरसे ! तुम श्रीराम के राज्य में निवास करती हो, अतः तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिए"।[13] परहित साधन में तत्पर उनका राक्षसों के साथ वैर बँध गया है। रावण ने उनकी यशस्विनी भार्या को हर लिया है। हनुमान इस तथ्य से परिचित थे कि अयोध्यानरेश का साम्राज्य समुंद्र पर्यन्त फैला हुआ था।

जातीय प्रभुता और सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे की प्रतिद्वन्दी थी। सुन्दरकाण्ड में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि उनमें समझौता असम्भव प्रतीत होता है। रावण सीता में पूर्णतया आसक्त था। अशोकवाटिका में धान्यमालिनी नामक राक्षसी रावण से कहती है कि सीता तो मानवी (दीन-हीन) है आप मेरे साथ क्रीडा कीजिए। अन्य राक्षसी परिचारिकाएँ भी सीता को मानव राम को त्याग कर राक्षसराज की भार्या बनकर सुखों को भोगने की प्रेरित करती हैं किन्तु सीता भी दृढ़ता पूर्वक कहती है कि "एक मानव कन्या किसी राक्षस की भार्या नहीं हो सकती। तुम सब भले ही मुझे खा जाओ, किन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती। मेरे पति दीन हो अथवा राज्यहीन-वे ही मेरे स्वामी हैं; वे ही मेरे गुरु हैं, मैं सदा उन्हीं में अनुरक्त हूँ और रहूँगी जैसे सुवर्चला सूर्य में अनुरक्त रहती है।"[14]

राक्षस प्रजाति मानव प्रजाति की सदैव उपेक्षा करती थी उन्हें तृणवत् समझकर विनष्ट करती थी। विभीषण तथा माल्यवान, (रावण के मातामह) पुनः पुनः रावण को अपनी संस्कृति को सुरक्षित करने की दृष्टि से समझाते हैं। श्रीराम भी अंगद (वाली पुत्र) को रावण के पास दूत बनाकर संदेश देते हैं कि आर्यसंस्कृति को देवता, गन्धर्व, यक्षादि भी मानते हैं, उनसे विरोध करने से सभी राक्षस (अनार्य) नष्ट हो जायेंगे। माल्यवान् ने भी तर्क दिया कि "महात्मा और देवताओं का पक्ष धर्म का है तथा राक्षसराज हमारा असुरों का पक्ष अधर्म का है। धर्म सदा विजयी होगा।"[15]

युद्धभूमि में इन्द्रजित् विभीषण को शत्रुपक्ष के साथ देखकर उन्हें राक्षस प्रजाति की गरिमा को बताकर अपने पक्ष में लौट आने का आग्रह करते हैं। मेघनाद ने इस प्रसंग में कहा कि तुम्हारा जन्म इसी कुल में हुआ है। तुम मेरे चाचा हो, फिर मुझसे क्यों द्रोह करते हो? तुम में न तो कुटुम्बी जनों के प्रति अपनापन का भाव है, न ही स्नेह ही है। तुममें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की मर्यादा, भ्रातृप्रेम और धर्म कुछ

भी नहीं है। तुम राक्षस-जाति को कलंकित करने वाले हो।[16] इसके प्रत्युत्तर में विभीषण कहते हैं कि यद्यपि मेरा जन्म क्रूरकर्मा राक्षसों के कुल में हुआ है, तथापि मेरा शील-स्वभाव राक्षसों का सा नही है। सत्पुरुषों का प्रधानगुण सत्तव का मैंने आश्रय लिया है। अधर्म में मेरी रुचि नहीं है।[17] जो दूसरा का धन लूटता है, परायी स्त्री में रुचि लेते है उस दुरात्मा को छोड़ देने में ही कल्याण है।

राक्षसराज रावण के मानव प्रजाति के प्रति कहे गए, व्यंग्य कथनों के विपरीत युद्धकाल में श्रीराम-लक्ष्मण से महान् संकट व विनाश को देखकर राक्षस-नारियों का विलाप करते हुए इस प्रकार कहना कि "जो असुरों देवताओं तथा नागों से भी भयभीत नहीं होते थे, उन्हीं को आज मनुष्य से यह भय प्राप्त हुआ है"।[18] रावण-पत्नी मन्दोदरी भी विलाप करते हुए कहती है "आपने तीनों लोकों को जीत कर अपने को सम्पत्तिशाली और पराक्रमी बनाया था। वही आज युद्ध में एक वनवासी मनुष्य से कैसे मृत्यु को प्राप्त हुए, क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती है? हे राक्षसेश्वर बताएँ तो सही, आखिर क्या बात है?[19] राक्षसों की हार का कारण अधर्म का पक्ष लेना था वस्तुतः ये लोक कल्याण के लिए युद्ध नहीं करते थे अपितु अपने स्वार्थ, हिंसा एवं क्रोध की भावना से युद्ध करते थे। उन्मत्तता, स्वेच्छाचरिता, भोगासक्ति, निरंकुशता आदि राक्षसों के हार के कारण थे।

इस प्रकार उपजीव्य काव्य रामायण में हमें भारतवर्ष की आत्मा का स्थायी निवास मिलता है। यदि रामायण को राष्ट्रीय भावना की गंगा की गंगोत्तरी माने, तो अतिशक्योक्ति नहीं होगी। महर्षि वाल्मीकि ने भारतीयों को राम की पावन कथा के अमृत के साथ ही साथ आत्मनिष्ठ राष्ट्रीय भावना का गंगाजल भी पिलाया है। राष्ट्र का कल्याण तभी संभव है, जब वहाँ की प्रजा सर्वगुणसम्पन्न होगी। राष्ट्र के नायक राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्नशील होंगे। अमात्यों में राष्ट्रभक्ति होगी। राष्ट्र की रक्षा हेतु सुदृढ़ प्रयास किये जाएगें।

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥

गुरु वसिष्ठक का कैकयी को फटकारते हुए कहना कि "श्रीराम जहाँ के राजा न होंगे, वह राज्य राज्य नहीं रह जायगा जंगल हो जाएगा तथा श्रीराम जहाँ निवास करेंगे, वह वन एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाएगा", राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट करता है।

महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि "जिस देश को राजनीतिक उन्नति करनी हो, वह पहले सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति करें अन्यथा राजनीतिक उन्नति आकाश में महल बनाने जैसी होगी"। रामायण कालीन राजनीतिक सुस्थिरता एवं उत्कर्ष तत्कालीन सांस्कृतिक उन्नति के कारण ही थी।

संदर्भ ग्रंथसूची :-

1. कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकाविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता सवयम् ॥
रामायण, बालकाण्ड, 5/5-6

2. तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः ।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥
रामायण, बालकाण्ड, 5/9

3. सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयता।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः॥
रामायण, 6/9

4. कञ्चिद् विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः।
अनसूयुरनुदष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥
कञ्चिदात्मसः शूराः श्रुतवनतो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः॥
रामायण, अयोध्याकाण्ड 100/15-16

5. यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुंधरा।
द्राविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः
वङ्गाङ्गमगधा मत्स्याः सम्द्धाः काशीकोसलाः ।
तत्र जातं बहु द्रव्यं धनधान्यमजाविकम्।
ततो वृणीष्व कैकयि यद् यत् त्वं मनसेच्छासि ॥
रामायण; अयोध्याकाण्ड, 10/137-38

6. अहं वनमिदं दुर्गे विराधो नाम राक्षसः।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन्॥
रामायण, अरण्यकाण्ड, 2/12

7. सो ऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथो ऽनाथवन् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम्॥
रामायण, अरण्यकाण्ड, 6/15

8. तपस्विनां रणे शत्रुन् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।

पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातु मे तपोधनाः।।

रामायण, अरण्यकाण्ड, 6/25

9. तरुणों रूपसम्पन्नो सुकुमारौ महाबलौ।

पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णजिनाम्बरौ ।।

फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्र ह्मचारिणौ।

पुत्रौ दशरथस्यातां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।

रामायण, अरण्यकाण्ड, 19/14-15

एष में प्रथमः कामकृतस्तत्र त्वया भवेत्।

तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे।।

रामायण, अरण्यकाण्ड, 19/20

10. न रामं गणये वीर्यान्मानुष क्षीणजीवितम्।

आत्मदुश्चरितैः प्राणान् हतो योऽथ विमोक्ष्यते ।।

रामायण, 22/2

11. इक्ष्वाकूणामिपं भूमिः सशैलवनकानना।

मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ।।

रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18/6

12. ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिरताः।

भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि।।

रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18/11

13. तस्याः सकाशं दूतो ऽहं गामिष्ये रामशासनात्।

कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनी।।

रामायण, सुन्दरकाण्ड, 1/154

14. न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।

कामं स्वादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ।।

दीनो वा राज्यहीनो वायो मे भर्तास मे गुरुः।

तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्ये सुवर्चला ।।

रामायण, सुन्दरकाण्ड, 24/8-9

15. धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम्।

अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस ।।

रामायण, युद्धकाण्ड, 35/13

16. इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम।

कथं दुह्यासि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ।।

न ज्ञातित्वं न सौहार्दे न जातिस्तव दुर्मते।

प्रमाणं न च सौदर्ये न धर्मो धर्मदूषण।।

रामायण, युद्धकाण्ड, 87/11-12

17. कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसा क्रूरकर्मणाम्।

गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम्।

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।।

रामायण, युद्धकाण्ड, 87/19-20

18. असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगे भ्यो ऽपि वा तथा।

भयं यो न विजानाति तस्येदं मानुषाद् भयम् ।।

रामायण, युद्धकाण्ड, 110/14

19. य त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः।

न व्यपत्रपसे राजन् कि मिदं राक्षसेश्वर।।

कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्।

अविषह्यं जद्यान त्वां मानुषो वनगोचरः।।

रामायण, युद्धकाण्ड, 111/5-6

■ ■ ■

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आलोक में ऋषि दयानन्द की वेदार्थप्रक्रिया

डॉ. निधि

वेदरत्न विषयविशेषज्ञा

कोर एकेडमिक यूनिट

शिक्षा निदेशालय दिल्ली

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ लिखते समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर प्रार्थना विषय से लेकर ग्रन्थ संकेत विषयपर्यन्त 35 विषयों का प्रतिपादन किया है। यह समस्त प्रतिपादन उन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों एवं वेदार्थ की प्रक्रिया की ओर निर्देशित करता है। जिनका उपस्थापन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का भाष्य करते समय किया है यह बात स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विज्ञापन के द्वारा निम्नलिखित शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भी की- **'जो व्यक्ति मेरे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ को नहीं पढ़ेगा वह मेरे किये भाष्य को समझ नहीं सकेगा, अतः जो कोई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के बिना केवल वेद ही लेना चाहे तो नहीं मिल सकते, किन्तु भूमिका ₹5 देने से पृथक् मिल सकती है[1]'।** इस कथन का स्पष्ट आशय विशेष वेदार्थ प्रक्रिया शैली की ओर संकेत करता है जिसका प्रकटन ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अंतर्गत किया है।

वेदभाष्य का लेखन आरम्भ करने से पूर्व ऋषि दयानन्द ने चारों वेदों का उपलब्ध वेद भाष्यों के साथ गहनता से पर्यालोचन किया अनन्तर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ का लेखन विक्रम संवत 1933 तदनुसार सन् 1876 में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ में उन सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं का 35 शीर्षकों के अन्तर्गत समावेश किया गया है जिनका पूर्वापर सम्बन्ध वेदभाष्य के साथ संदर्भित होता है। प्रस्तुत प्रपत्र में उपर्युक्त शीर्षकों पर एक विहंगम दृष्टिपात करने के उद्देश्य से विषयों का क्रमवार संकलन किया गया है–

वेदभाष्य करने की ऋषि की अन्तर्दृष्टि भूमिका के आरम्भिक प्रकरण ईश्वरप्रार्थनाविषय में प्रकट होती है–

1. **ईश्वरप्रार्थना-विषय-** इस प्रकरण में **एक** सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्द परमेश्वर की स्तुति करते हुए तीन महत्वपूर्ण प्रतिज्ञाओं की स्थापना करते हैं-

- **पर ब्रह्म की उपासना**

- **लोक कल्याण**
- **शब्द प्रामाणिक वेद भाषा की रचना**

1. ईश्वरप्रार्थनाविषय	18. वैद्यकशास्त्रमूलोद्देशः
2. वेदोत्पत्तिविषय	19. पुनर्जन्मविषय
3. वेदानां नित्यत्वविचार	20. विवाहविषय
4. वेदविषयविचार	21. नियोगविषय
5. वेदसंज्ञाविचार	22. राजप्रजाधर्मविषय
6. ब्रह्मविद्याविषय	23. वर्णाश्रमविषय
7. वेदोक्तधर्मविषय	24. पञ्चमहायज्ञविषय
8. सृष्टिविद्याविषय	25. ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय
9. पृथिव्यादिलोकभ्रमणविषय	26. अधिकारनधिकारविषय
10. आकर्षणानुकर्षणविषय	27. पठनपाठनविषय
11. प्रकाश्यप्रकाशकविषय	28. भाष्यकरणशङ्कासमाधानविषय
12. गणितविद्याविषय	29. प्रतिज्ञाविषय
13. ईश्वरस्तुतिप्रार्थनायाचनासमर्पणो-पासनाविषय	30. प्रश्नोत्तरविषय
	31. वैदिकप्रयोगविषय
14. उपासनाविषय	32. स्वरव्यवस्थाविषय
15. मुक्तिविषय	33. व्याकरणनियमविषय
16. नौविमानादिविद्याविषय	34. अलङ्कारभेदविषय
17. तारविद्यामूलविषय	35. ग्रन्थसङ्केतविषय

I) पर ब्रह्म की उपासना -

ग्रन्थ के आरम्भ में ओम् सह नाववतु[2] मंत्र का उल्लेख करने के पश्चात ऋषि सर्वप्रथम लिखते हैं-

ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतम्।

विद्या यस्य सनातनी निगमभृद् वैधर्म्यविध्वंसिनी॥

वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा।

तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते[3]॥

जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है जिसकी वेद विद्या सनातन है उसको अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेदभाष्य बनाने का आरम्भ करता हूं। ब्रह्म जो अनादि अनन्त विशेषणों से युक्त जिसे शास्त्रों में **ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्[4] ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म[5] यदक्षरं वेदविदो वदन्ति[6] यतो वा इमानि[7]** आदि वचनों में कहा गया है उसे एक ईश्वर को सृष्टि का कर्ता विधाता और संहर्ता स्वीकारने और उपासना करने योग्य है।

II) लोक कल्याण–

मानव मात्र के कल्याण हेतु वेद भाष्य के प्रणयन की प्रतिज्ञा करते हुए ऋषि लिखते हैं–

मनुष्येभ्यो हितायैव सत्यार्थं सत्यमानतः।

ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते[8]॥

आर्य भाषा में इसका भाव लिखते हुए ऋषि कहते हैं– ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों के हित के लिए इस वेदभाष्य का विधान मैं करता हूं। यहां विशेष ध्यातव्य पद **"सब मनुष्यों के हित के लिए"** है। समाज में जहाँ एक और जाति व्यवस्था के नाम पर मनुष्य–मनुष्य में भेदभाव के आधार पर **स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः** वचन कहकर वेदों को मानव मात्र से वंचित रखने का प्रयास किया गया वहाँ ऋषिवर दयानन्द ने मानव मात्र के प्रति उपकार करते हुए वेद का अंतः साक्ष्य प्रमाण उपस्थित करते हुए लिखा– **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय[9]॥** 'आ वदानि जनेभ्यः' इस संविधान वाक्य के आधार पर ही ऋषि ने **'सब मनुष्यों के हित के लिए'** इस वचन का कथन किया।

शब्द प्रमाणिक वेद भाष्य की रचना-

प्रमाण मीमांसा में शब्द प्रमाण चौथे स्थान पर परिगणित होता है। कौन सा शब्द प्रमाण योग्य है? इस प्रश्न के उत्तर में तर्क शास्त्र कहता है- **आप्तोपदेशः शब्दः** आप्तों[10] द्वारा उपदिष्ट वचन शब्द है। दयानन्द सरस्वती ग्रन्थ की भूमिका के आरम्भ में लिखते हैं-

आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी। तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा॥

इस वेद भाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है किन्तु जो ब्रह्मा से लेकर व्यासपर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्या रीति है उससे युक्त ही यह वेद भाष्य बनाया जाएगा। अप्रमाण लेख को स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं– वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे निवृत्त हो जायेंगे[11]।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ का प्रयोजन लिखते हुए ऋषि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं– **यह भाष्य ऐसा होगा कि जिससे वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोष के आरोप हुए हैं वे सब निवृत हो जाएंगे।**[12] इस पंक्ति को लिखने के परिप्रेक्ष्य में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने वेद के विविध भाष्यों और टीकाओं का अनुशीलन किया, जिसमें प्राचीन और पाश्चात्य पाश्चात्यभाष्यकारों के भाष्य याज्ञिक कर्मकाण्ड पद्धति प्रधान प्राप्त होते हैं, **वेदाः यज्ञार्थमेव प्रवृत्ताः** इस अवधारणा के अनुमोदक व्याख्याकारों ने केवल याज्ञिक प्रक्रियापरक वेदार्थ को स्वीकार किया। कुछ एक के आध्यात्मिक भाषा भाष्य उपलब्ध होते हैं, जैसे– महर्षि अरविन्द का हिन्दी भाषा में उपलब्ध वेद रहस्य ग्रन्थ। इस कारण ही कई विद्वान् इस ग्रन्थ की व्यापकता को ही नहीं स्वीकार कर पाये कि वेद सब विद्याओं का स्रोत भी हो सकता है, ऐसे विद्वानों में हरिहरानन्द करपात्री जी का नाम प्रमुख है, जिन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के विरोध में लगभग १००० पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ वेदार्थ पारिजात लिख डाला। जिसका उत्तर ग्रन्थ वेदार्थ कल्पद्रुम तथा वेदार्थ प्रकाश लिखा गया। पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर ने जब ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ का अध्ययन किया तब उन्होंने लिखा– **संस्कृत साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से होता है और उसकी समाप्ति स्वामी दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर होती है**[13]**।** अस्तु

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ के लेखन से पूर्व न केवल वेदों का स्वाध्याय किया अपितु चारों वेदों को अपनी मेधा के द्वारा मथा भी, और मन्थन करने के उपरान्त जो नवनीत निःसृत हुआ उसे **चतुर्वेद विषय सूची** ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रति वर्ग प्रतिसूक्त का विषय प्रतिपादित करते हुए सूचीबद्ध भी किया। इस ग्रन्थ के लेखन काल में ही दयानन्द सरस्वती ने वेदों को विविध विद्याओं का आकर ग्रन्थ स्वीकार किया। चतुर्वेद विषय सूची ग्रन्थ को आधार बनाकर ऋषि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ का प्रणयन किया। सारांश में कहें तो यह ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा चारों वेदों का सूत्र रूप में किया गया वेद भाष्य है। यह एक मात्र वेद भाष्य अन्य वेदभाष्यकारों के लिए वैज्ञानिक भाष्य के रूप में, पथ प्रदर्शक ज्योति पुंज के समान है। यद्यपि ऋषि दयानन्द ने प्रकटरूप में केवल यजुर्वेद एवं ऋग्वेद के सातवें मण्डल तक का ही वेदभाष्य किया परन्तु ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य से लाभान्वित होने वाले अध्येता चतुर्वेद विषयसूची के माध्यम से चारों वेदों में ऋषिज्ञान का मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

विशिष्ट वेदार्थ प्रक्रिया -

ऋग्वेद के दशम मण्डल का दशम सूक्त विद्वानों के मत में यम–यमी नाम से प्रसिद्ध है। सगे भाई बहन के रूप में प्रसिद्ध यम और यमी इस सूक्त के पात्र हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस सूक्त को जल पदार्थ विद्या वर्णन सूक्त के नाम से संबोधित किया। ऋषिकृत सुमेधा को तर्क की कसौटी पर कसने पर यास्क कृत निरुक्त का निम्नलिखित सिद्धांत उपस्थित होता है- – **प्रकरणशः एव मन्त्राः निर्वक्तव्याः**[14]। संदर्भ प्रसंग अनुसार ही मन्त्रों का विनियोग करना चाहिए इस नियम के अनुसार इस सूक्त का अनुशीलन करें तो उपयुक्त ऋषि कथन तर्कसंगत प्रतीत होता है। इससे पूर्व सूक्त में जल विद्या का वर्णन होने से इस सूक्त वर्णित यम–यमी जलों के दो

विभाग हैं, जिसे महामहोपाध्याय युधिष्ठिर मीमांसक जी ने **हाइड्रोजन और ऑक्सीजन** के नाम से व्याख्यात किया है[15]। वस्तुतः यहां स्त्री तत्व ष्ट्यै स्त्यै संघाते से स्त्री संघात करने के कारण से प्राण तत्व है जिनकी स्थिति पृथ्वी लोक से लेकर अंतरिक्ष की परत तक है। सूर्य की किरण के सहाय से ऊपर जाता हुआ जल अंतरिक्ष स्थान में ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में परिवर्तित होता है अतः यम यमी को निघंटु एवं निरुक्त में मध्यम स्थानी देवताओं में पढ़ा गया है। हाइड्रोजन की उपस्थिति द्युलोक में प्रचुरता से पाए जाने से द्युस्थानीय शब्दों में भी पठित है, अतः- **गर्भे नु नौ जनिता दम्पती[16] किं भ्राता सद्यनाथं भवाति[17], किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्[18]**

आदि मन्त्रों की उचित अर्थ के साथ संगति हो जाती है क्योंकि वह गर्भस्थ जल एक ही है जिससे प्राण वायु और अपान वायु की उत्पत्ति होती है जो यम एवं यमी नाम से सूक्त में उपयुक्त हैं।

इसी प्रकार कुन्ताप सूक्त का उल्लेख अथर्ववेद के बीसवें कांड में उपलब्ध होता है जिनका उल्लेख करते हुए ऋषि दयानन्द अथर्ववेद भाष्य विषयानुक्रमणी में लिखते हैं– **भद्रेण वचसा वयमित्यादि[19] आदलाबुकमेककम्[20] इदं राधो विभुप्रभ्वित्यादि[21] इति कुन्तापसूक्तानि। परिशिष्टानि प्रक्षिप्तानीति विज्ञेयम्**

इस प्रकार अथर्ववेद के प्रक्षेप का भी स्पष्ट निर्देश करना ऋषि की वेदार्थ के प्रति महती सूक्ष्मक्षिका को प्रदर्शित करता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के अन्तर्गत, वेदविषय प्रकरण का लेखन करते हुए इसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषय निहित है? इस पर विचार करते हुए ऋषि दयानन्द अनेक विषयों को वेद में अवयव रूप से स्वीकार करते हैं परन्तु मुख्य रुप से चार विषय प्रतिपाद्य बताये -

1) विज्ञान अर्थात सब पदार्थों को यथार्थ जानना

2) कर्म

3) उपासना

4) ज्ञान

1. **विज्ञान** उसको कहते हैं जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से ले के तृणपर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध का होना उनसे यथावत् उपयोग का करना। इससे यह विषय इन चारों में प्रधान है[22]। दयानन्द का वेदों के प्रति यह चिन्तन ही उनको अन्य वेदभाष्यकारों से अलग पङ्क्ति में खड़ा करता है। साक्षात् चिन्तन परमेश्वर से लेकर समस्त पदार्थो का - वेदों में उपस्थित है इस विचार को वेदार्थ करते समय बहुधा उल्लेख भी किया है जैसे - **अध्यापक और अध्येता को चाहिए कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों की रक्षा आदि के लिये जानें[23]**।

यजुर्वेद भाष्य 24.2 के भावार्थ में लिखा- **परमेश्वर से लेके पृथिवीपर्यंत पदार्थो के यथार्थ ज्ञान करके विज्ञान से उपयोग ग्रहण कर सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें।** संस्कार विधि के वेदारम्भ संस्कार में लिखा - **अथर्ववेद का**

उपवेद जिसको शिल्पशास्त्र कहते हैं जिसमें विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं उनको तार, भूगर्भ, आदि विद्याओं को साक्षात् करे। यजुर्वेद 6.8 का भावार्थ लिखते हुए कहते हैं– **कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियों को परमेश्वर से ले के पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिए।**

सभी पदार्थों का बोध भारतीय युवकों को हो इसके लिये दूरद्रष्टा दयानन्द ने एक कौशल विद्यालय स्थापित करने का विचार भी बनाया। ऋ. द. पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ से विदित होता है कि उन्होंने लाला मूलराज को पूत्र लिखा है कि **बहुत से युवकों को नौकरी का प्रबन्ध नहीं देखकर मैं यह अब स्पष्ट या वे जीवन निर्वाह कर सकते ऐसी व्यवस्था एक कला-कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूं।**[24] इसके अतिरिक्त उन्होंने विविध कलाओं को सीखने हेतु जब युवकों को जर्मनी भेजने की योजना बनाई, उन्होंने एक पत्र में लिखा- **मेरा विचार है, कुछ पुरुष कौशल सीखने के लिये जर्मनी भेज दिये जाएं**[25]**।** इसके लिये स्वामी जी ने जर्मनी के प्रो. जी. वाईज, एलबीट्स स्ट्री तथा, बैटन से लम्बा पत्र व्यवहार भी किया।[26]

2. **कर्म**–

   दूसरा विषय इस शास्त्र में कर्म को बताया गया है कर्मकाण्ड के बिना तो ज्ञान भी व्यर्थ है जैसा कि निरुक्त शास्त्र में वचन है – **ज्ञानं भारः क्रियां विना** [27] समस्त ज्ञान का परिणाम भी कर्म है। सामान्य शब्दों में कर्म को संसार की समस्त क्रिया व्यापार कहा गया है। कर्म के भेदों का आख्यान करते हुए ऋषि दयानन्द कहते हैं– **कर्मणः द्वौ भेदौ मुख्यौ स्तः– एकः परमपुरुषार्थसिद्ध्यर्थोऽर्थाद्य ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाज्ञापालनधर्मानुष्ठान– ज्ञानेन मोक्षमेव साधयितुं प्रवर्तते। अपरो लोकव्यवहारसिद्धये यो धर्मेणार्थकामौ निवर्त्तयितुं संयोज्यते।** अर्थात् प्रथम से परमार्थ और दूसरे से लोकव्यवहार को सिद्ध करने हेतु कर्म को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की विद्या ही कर्म है।

3. **उपासना-** उपासना के सन्दर्भ में भी सामान्य जनों को अत्यन्त भ्रम बना रहता है किसकी उपासना करे? जो जिसकी संगति विशेष में रहता है वह उसको ही अपना आराध्य देव मानने लगता है। जिस बाबा जी का सान्निध्य मिला वही उपास्य हो गये, किन्ही देव विशेष का सान्निध्य प्राप्त करके मनुष्य उसी का उपासक बन जाता है परन्तु इस प्रकार वह परमार्थ की सिद्धि से वञ्चित हो जाता है। ऋषि उपासना को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– **यत्सर्वं जगत्कर्तृ सर्वशक्तिमत् सर्वस्येष्टं सर्वोपास्यं सर्वाधारं सर्वव्यापकं सर्वकारणम् अनादि सच्चिदानन्दस्वरूपम् अजं न्यायकारीत्यादिविशेषणयुक्तं ब्रह्मास्ति, स एवैको..... परमेश्वरो देवः सर्वमनुष्यैरुपास्योऽस्तीति मन्यध्वम् ।** अर्थात् – सब मनुष्यों के उपासना के योग्य तो देव एक ब्रह्म ही है, जो सब जगत् का कर्ता, सर्वशक्तिमान्, सबका इष्ट, सब मनुष्यों के उपासना के योग्य, सबका धारण करनेवाला, सबमें व्यापक और सबका कारण है, जिसका आदि अन्त नहीं, और जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, जिसका जन्म कभी नहीं होता, और जो कभी अन्याय नहीं करता इत्यादि विशेषणों से वेदादिशास्त्रों में जिसका प्रतिपादन किया है, उसी को इष्टदेव मानना चाहिये[28]।

4. **ज्ञान**– वेद में उपलब्ध समस्त सत्य विद्याओं का नाम ज्ञान है।

सब सत्य विद्याओं एवं पदार्थ विद्याओं का स्रोत वेद को स्वीकारते हुए ऋषि ने ऋग्वेद के 332 वर्गों में पदार्थ विद्या का 66 वर्गों में शिल्पविद्या का वर्णन माना। इसके अतिरिक्त विद्युत विद्या 278 में वर्गो में, अग्निविद्या 193 अश्व विद्या (यान्त्रिक ऊर्जा) में, 1, वायु विद्या २८, सूर्यविद्या-16, जलविद्या-१, पृथिवीविद्या - 2 समुद्रविद्या-2 आकाशविद्या - 1, भूगोलविद्या, काल 17 सृष्टि उत्पत्ति विद्या- 24/ मेघ विद्या / वृष्टि विद्या- 20, तारविद्या- 1 आकर्षण विद्या- विद्या-17, लोकश प्राण विद्या - 6 लोगभ्रमण विद्या-3 पर्यावरण विद्या /यर विद्या-12 युद्धविद्या - 21 विमान विद्या-13 नौयान- विद्या - 3 रथयान विद्या-14 अलंकार विद्या -5, चिकित्साविद्या ११ गणित- विद्या - 8 'वर्गों में तथा इसी प्रकार अथर्ववेद के 2 अनुवाकों में खगोलविद्या वर्णित की है।

उपसंहार - ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्तर्गत वर्णित मुख्य शीर्षकों का विस्तृत प्रकाश ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य में प्रकट होता है। अत: भूमिका ग्रन्थ को वेदभाष्य का दर्पण कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी जिसमें वर्णित सभी वेद विषय वेदार्थ को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस भूमिका ग्रन्थ के प्रकट होने के बाद ही विद्वानों से लेकर जनसामान्य तक की अवधारणा वेदों के सन्दर्भ में बदली कि– वेद केवल यज्ञ के लिये ही नहीं अपितु समस्त भौगोलिक एवं खगोलिक विद्याओं का प्रकाश करने वाला महनीय वाङ्मय है, इसको बताने वाले ऋषि दयानन्द की वेदार्थ को महनीय देन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋ. द. के पत्र और विज्ञापन पृ. 138
2. तैत्तिरीय आरण्यक 9/1
3. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषय
4. माण्डूक्य उपनिषद्
5. श्रीमद्भगवद्गीता 8.4
6. श्रीमद्भगवद्गीता 8.11
7. तैत्तिरीय उप
8. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषय पृ 2
9. यजु. सं. 26/2
10. आप्ताः के? आप्ताः शिष्टा विबुधास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्। सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः। इति चरकः
11. येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः। दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थं विवर्णनाः॥ ऋ भा भू ईस्वरप्रार्थनाविषय पृ 2
12. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ प्रयोजन
13. हम भारत से क्या सीखें? तृतीय भाषण का अंश
14. निरुक्तम्

15. निबन्धसंकलन……

16. ऋ10.10.

17. ऋ10.10.

18. ऋ10.10.

19. अथर्व. सं. 20.127.14

20. अथर्व. सं. 20.132.1,2

21. अथर्व. सं. 20.135.9

22. ऋ भा. भू, वेदविषय विचार पृ.50

23. यजुः भाष्यम् 3.51

24. ऋ. द. पत्र वि. इन्हीं पत्र व्यवहार से विदित होता है कि .450

25. ऋ. द.प.वि. पृ. 379-380

26. वेदार्थ में महर्षि दयानन्द की वैज्ञानिक दृष्टि– वैदिक वाक् ज्योति Vol.3 No. 2-5 1.16 Jan 2014- Dec: 2015 ISSN-2277-435)

27. निरुक्तशास्त्रम्

28. वेदविषयविचार, पृ. 78-79

अंतर्दृष्टि

■ ■ ■

प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

सिमरन
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, साहित्य और कला, उसकी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति को प्राचीन संस्कृति के रूप में जाना जाता है। भारतीय संस्कृति के विनाश के कई प्रयास बाहरी शक्तियों द्वारा समय समय पर किये गए, बावजूद इसके भारतीय समाज आज भी अपनी संस्कृति, परंपरा और मर्यादाओं को बचाए हुए है और इसी से राष्ट्र की आत्म प्रबलता को समझा जा सकता है। कोई भी संस्कृति हवा में जन्म नहीं लेती, बल्कि वर्षों से हस्तांतरित की जा रही परंपराओं का परिणाम होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी उसे हस्तांतरित कर, संस्कृति के संरक्षण का कार्य करती है। भारत में अंग्रेजों के आगमन ने समाज को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि अनेक स्तरों पर प्रभावित किया। भारतीय जनमानस को जिस पीड़ा का सामना करना पड़ा, उससे आज की युवा पीढ़ी अनभिज्ञ होती जा रही है।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का शंखनाद कई बार भारत के शूरवीरों द्वारा किया गया, किन्तु अंग्रेजी शासन की कूटनीति, धूर्तता के कारण, भारत ने लम्बे समय तक दासत्व को झेला। अंग्रेजी सरकार का निरंकुश शासन किसी भी विचार को रखने की अनुमति नहीं देता था। प्रेस ऐक्ट कानून के द्वारा जनता के विचारों का दमन किया जा रहा था। जबकि जनता के भीतर अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आक्रोश बढ़ रहा था। युवा आलोचक नरेंद्र शुक्ल लिखते हैं-"**बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी के विधिवत स्थापित हो जाने के बाद जब कंपनी के ही कुछ पूर्व कार्यकर्ताओं द्वारा प्रेस का उपयोग समाचार-पत्र हेतु करने का प्रयास किया गया और ऐसे कुछ समाचारों से कंपनी प्रशासन को असहज स्थिति का सामना करना पड़ा, तब उसने प्रेस पर नियंत्रण की पहल की। यहाँ से भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संघर्ष की वह गाथा आरंभ होती है, जिसका पहला पड़ाव 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ खत्म होता है**।"[1] इस प्रकार भारत में प्रेस के आगमन ने भारतीय जनता के भीतर अभिव्यक्ति की आजादी को प्रबलता दी, जिसके प्रमाण आज हमें प्रतिबंधित साहित्य के रूप में प्राप्त होते हैं। मुगलों के आक्रमण ने देश को बहुत कमजोर कर दिया था, दासत्व की प्रवृत्ति हमें भीतर तक प्रभावित कर चुकी थी, शायद यही कारण था कि अंग्रेजी सत्ता ने भारत पर लम्बे समय तक शासन किया और अपने निरंकुश शासन से देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि जड़ों को धीरे-धीरे कमजोर करना आरंभ कर दिया। इस शासन से त्रस्त जनमानस में क्रांति की ज्वाला जन्म लेने लगी। 1857 का विद्रोह कोई तात्कालिक सामान्य घटना नहीं थी, बल्कि वर्षों से दंश को झेलते रहने का परिणाम थी। कहा जाता है कि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का शंखनाद 1857 की क्रांति से आरंभ हो जाता है जिसके बाद जनता के भीतर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रांति की ज्वाला ददकने

लगती है। विपिन चंद्र लिखते हैं- "**1870 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दंड संहिता में धारा 124 ए को, जिसके तहद 'भारत में विधि द्वारा स्थापित' ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध की भावना भड़काने वाले व्यक्ति को तीन साल की कैद से लेकर आजीवन देश निकाला तक की सजा दिए जाने का प्रावधान था। बाद में इस धारा में कई कड़े प्रावधान जोड़े गए।**"[2] इससे स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी सरकार ने प्रेस की महत्ता को पहचान लिया था। यही कारण था कि आम जनता को प्रेस से, पत्र-पत्रिकाओं से दूर रखने के लिए षड्यन्त्र रचे गए। प्रेस पर नए नए कानून लागू किए गए, ऐसे कानून जिसके माध्यम से सत्ता विरोधी बयान नहीं दिए जा सके।

प्रेस के आगमन से धीरे धीरे जनता का आत्मविश्वास बढ़ने लगा, समाज का शिक्षित वर्ग अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लिख रहे थे। चुपचाप किए जाने वाला विरोध, अब सामने से किया जाने लगा। अनगिनत स्वाधीनता सेनानियों ने अंग्रेजी शासन का विरोध किया और परिणामस्वरूप फांसी पर चढ़ाए गए। **खुदीराम बोस, शहीद भगत सिंह, सुखदेव, अशफाक उल्ला खां, राम प्रसाद बिस्मिल** जैसे सेनानियों ने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। ऐसी घटनाओं से जनता में आक्रोश बढ़ने लगा, जहाँ स्वाधीनता सेनानी अंग्रेजों का डटकर सामना करने लगे, तो वहीं दूसरी ओर लेखक अंग्रेजी सरकार के अन्याय के खिलाफ लिखने लगे, जिसके कारण प्रतिदिन अनगिनत लेखकों को कारागाह में डाला जाता, बावजूद इसके उनकी कलम नहीं रुकती। प्रेस ऐक्ट कानून के तहत जो भी अंग्रेजी शासन विरोधी रचनाएं लिखी जाती, उसको सरकार द्वारा तत्काल प्रतिबंधित कर दिया जाता या प्रकाशन से पहले ही जब्त कर लिया जाता। ए.आर.देसाई लिखते हैं "**अंग्रेजों के बीच भी स्वतंत्र भारतीय प्रेस विवादस्पद रहा । उन्नीसवीं सदी में बेलजली, मिन्टो एडम, कैनिग और लिटन, प्रेस की आजादी पर कठोर प्रतिबंध के पक्षधर रहे, लेकिन हैसिंटग्स, मेटकोफ, मकाले और रिपन ने भारत में स्वतंत्र प्रेस का समर्थन किया। सर टॉमस मुनरो और लॉर्ड एलफिंसटन जैसे उदारवादी ब्रिटिश नेताओं ने भी भारतीय प्रेस पर कठोर प्रतिबंधों का समर्थन किया। उनका तर्क था कि पिछड़े हुए देश पर विदेशी शासन बनाए रखना कठिन होगा, अगर प्रेस को आजादी दी गई, क्योंकि इसका सेनाओं के अनुशासन पर भी बुरा असर पड़ सकता है।**"[3]

स्पष्ट है कि अंग्रेजी सत्ता के भीतर प्रेस की आजादी के परिणाम का भय बना हुआ था, किन्तु वह इस बात से अनभिज्ञ थे कि पत्रिकाएँ जन मानस को इस प्रकार प्रभावित कर सकती हैं कि वह विद्रोह कर उठे। उस समय बंगला, मराठी, हिंदी, पंजाबी, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में अंग्रेजी सरकार के विरोध में रचनाएं की गईं, जिसका मूल स्वर स्वाधीनता प्राप्ति की इच्छा तो था ही, साथ ही सोए हुए उस वर्ग को जगाना भी था, जो कहीं न कहीं अंग्रेजी शासन के पक्ष में था। लेखकों द्वारा शुरुआत में छोटे-छोटे समाचार पत्रों में लेख प्रकाशित किए जाने लगे, जिसे बाद में सरकार द्वारा प्रतिबंधित किया जाना लगा। अंग्रेजी सरकार संस्कृत, उर्दू और हिन्दुस्तानी भाषा सही से नहीं जानती थी, ऐसे में भारतीय लेखकों ने सोचा कि कविता, नाटक, कहानी, यात्रा वृतांत आदि विधाओं में विचार को व्यंजनात्मक तरीके से लिखकर जनता तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार लेख, पत्रों आदि के स्थान पर बाद में काव्य, नाटक आदि की रचना अधिक की जाने लगी। और इसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता के भीतर आजादी की इच्छा जागृत

होने लगी। उस समय अनगिनत ऐसे स्वाधीनता सेनानी हुए, जिन्होंने बार बार जेल की यात्राएँ की, साथ ही लिखते भी रहे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अनेक पत्रिकाएं उस काल में निकाली, ये पत्रिकाएं अंग्रेजी सरकार के निरंकुश शासन के विरोध में जनता के लेखों को भी छापती। आर्थिक विपन्नता के कारण हिंदी की अधिकांश पत्रिकाएँ बार-बार बंद हो जाती। इन पत्रिकाओं ने जन जन के भीतर आजादी की लौ को जलाने का काम किया। भारतीय भाषाओं में रचनाएं की जाने लगी। देश के लिए प्राणों का बलिदान देने वाले स्वाधीनता सेनानियों ने जेल में रहकर भी रचनाएँ की। हिंदी के लेखकों में प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, अज्ञेय, रेनू, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि तो विख्यात थे। कई गुमनाम रचनाकार भी हुए, जिन्होंने देश की आजादी में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, किन्तु इतिहास की किताबों से आज भी उनका नाम धूमिल है। अंग्रेजी शासन के विरोध में अनेक रचनाएं लिखी गईं, 1922 में लिखी यह कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध
प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृ-भूमि पर शीश- चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक"[4]

उपरोक्त पंक्तियाँ माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा देश-प्रेम को जागृत करने हेतु प्रेरित करती है। ठीक इसी प्रकार के अनेक प्रयास उस समय के लेखकों द्वारा किए जाते रहे। अलग-अलग राज्यों से निकलने वाली पत्रिकाओं को प्रतिबंधित किया जाने लगा। जैसे प्रताप, शंखनाद, स्वदेश, सुधा चाँद, अभ्युदय, कल्याण, हिन्दू पंच, अलंकार, सत्याग्रही, केसरी और सैनिक आदि। ये सभी पत्रिकाएँ अंग्रेजी सरकार द्वारा बार बार बंद हुई। अंग्रेजी सरकार के अधिनियम का विरोध करते हुए बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं - **"अब हमारी जीभ काट ली गई है, फिर भी हमारा मस्तिष्क लगातार कह रहा है कि यह अधिनियम अनैतिक और अन्यायपूर्ण है। अपने सम्पूर्ण प्रयास के बावजूद हमारे हृदय में जो देश भक्ति की आग लग चुकी है उसे रोक नहीं पा रहे हैं।"**[5] इससे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के महत्त्व और साहस का पता लगता है। यही कारण था कि मीडिया को लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ से संबोधित किया

जाता था। वर्तमान में मीडिया का अस्तित्व जिस प्रकार से संकट में है उसे पत्रिका के पुराने मूल्यों को समझने की पुनःआवश्यकता है।

सत्ता विरोधी पत्रिकाओं को प्रतिबंधित कर दिया जाता या प्रकाशन से पूर्व ही जब्त कर लिया जाता। पत्र-पत्रिकाएं जनता में इस प्रकार क्रांति को जन्म देगी, अंग्रेजी सरकार को इसका आभास नहीं था। इन पत्रिकाओं के माध्यम से गीत, नाटक जन-जन तक पहुचने लगे। गा-गाकर गीत को प्रसारित किया जाता, नाटक मंडली के माध्यम से अंग्रेजी सरकार की कूटनीति को जनता के सम्मुख लाया जाता। भारतेन्दु द्वारा रचित नाटक 'अंधेर नगरी' भी इसी उद्देश्य हेतु लिखा गया था। अग्रेजों द्वारा ऐसी पत्रिकाओं व रचनाओं को प्रतिबंधित किया जा रहा था, जो सीधे सीधे उनके शासन आदि पर कटाक्ष कर रही थी। इसलिए बहुत से रचनाकारों ने जन जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए द्विअर्थी भाषा का प्रयोग किया। ऐसी रचनाएं अग्रेजों द्वारा प्रतिबंधित नहीं की जाती। इन रचनाओं में कविता, नाटक आदि का विशेष योगदान रहा। राष्ट्रीय चेतना को उद्घाटित करती अनेक कविताएँ लिखी जा रही थी। उदाहरणार्थ -

"जो भरा नहीं है भावों से

बहती जिसमें रसधार नहीं ।

वह हृदय नहीं वह पत्थर है

जिसमे स्वदेश का प्यार नहीं।"[6]

उपरोक्त कविता के समान ही अनेक ऐसी कविताएं इस युग में लिखी जा रही थीं। कुछ रचनाकार विख्यात थे तो कुछ बेनाम होकर रचनाएं जन-जन तक पहुँचा रहे थे। इस काल में केवल लेखक वर्ग ही लेखन नहीं कर रहा था बल्कि आम जनता भी पत्र-पत्रिकाओं में अपने विचार और रचनाएं भेजा करती थी। अंग्रेजी सरकार के भय के कारण आम स्त्री-पुरुष दूसरे नाम से रचनाएं भेजते। आज के समय में उन सभी रचनाकारों की पहचान इसीलिए भी सवाल बनी हुई है, क्योंकि उन्होंने प्रसिद्धि हेतु रचना कर्म का सहारा नहीं लिया था, उनका एकमात्र लक्ष्य भारत को अंग्रेजी सत्ता से मुक्त कराना था। कविता की भाँति ही अनेक नाटकों को भी इस काल में प्रतिबंधित किया गया, वहीं कई नाटकों को प्रकाशन से पूर्व ही जब्त कर लिया जाता। लाड़लीप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा नाटक 'झांसी की रानी' 1924 में लिखा गया था, जिसे अंग्रेजी सरकार ने प्रकाशन से पूर्व ही जब्त कर लिया। इस नाटक में राष्ट्रीय एकता का शंखनाद किया गया है और अंग्रेजी सत्ता के निरंकुश शासन पर सवाल उठाएँ गए हैं। उस नाटक की पंक्तियाँ दर्शनीय है - **"फकीर आकर फूल चढ़ाता है और प्रार्थना के स्वर में गाता है -**

"हे माता हे माता

हम याद तुम्हारी में कुछ करके दिखा देंगे

हिन्द का मान बढ़ा देंगे

माता कुछ करके देखा देंगे

नगर नगर में डगर डगर में तूफान मचा देंगे

आजादी की बलिवेदी पर अपने प्राण गंवा देंगे"[7]

इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से जहाँ एक ओर अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति की ज्वाला दिखलाई पड़ती है तो दूसरी ओर देश के प्रति प्रेम, समर्पण, बलिदान की भावना भी स्पष्ट होती है। इस प्रकार के कई नाटक आज भी देश के अलग-अलग हिस्सों में गुमनाम हैं, जिन्हें सभी के प्रयास से आगे लाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार उस समय अनेक नाटक जैसे- **कुली प्रथा, जख्मी पंजाब, शासन की पोल, लाल क्रांति के पंजे, बर्बादी-ए-हिंद, रक्त ध्वज और लवण लीला**, प्रतिबंधित किए गए। इन सभी नाटकों में अलग अलग विषयों को स्थान दिया गया है, किसी में अंग्रेजी शासन की निरंकुशता का वर्णन है तो किसी में स्वदेशी आंदोलन की गूंज। इन नाटकों में अभिनय के लिए गीतों का प्रयोग अधिक किया जाता था, यह नाटकों की मुख्य विशेषता थी। इस काल में उपनिवेशी शासन के विरोध में अनेक नाटक खेले गए किन्तु वे छप कर प्रकाशित नहीं किए जा सके। वहीं जो नाटक छापे जाने होते, उसे रातों रात सरकार द्वारा जब्त कर लिया जाता। जिसकी चर्चा एक प्रतिबंधित वीर छन्द के माध्यम से लेखक करता है -

"ऐसौ राज फिरंगी आयौ, परजा रही बहुत अकुलाय।

इसी वजह से सत्तावन में दिनों यहाँ पर गदर मचाय।"[8]

1857 के विद्रोह ने जनता के भीतर अंग्रेजी सत्ता के प्रति जो आक्रोश पैदा किया, उसका परिणाम ही 1947 में भारत के आजाद होने की वजह बना। किन्तु आजादी की इस यात्रा में अनेक स्वतंत्रता सेनानी ने अपने प्राणों का बलिदान दिया, जो अमूल्य है। वहीं रचनाकारों ने अपने लेखन के माध्यम से तत्कालीन समस्याओं के समाधान के प्रयास किए। जिसका असल प्रमाण उस काल में अलग अलग राज्यों से निकली गई पत्रिकाएँ हैं। एक प्रतिबंधित लोक गीत के माध्यम से उस युग की पीड़ा को समझा जा सकता है -

"पंचों कान लगा कर सुनना घर में राज लुटेरों का।

पंचों कान लगाकर सुनना घर में राज लुटेरों का।

दिन घौली डाका डलवाते,

घर बार की जफ्ती करवाते,

चकमा दे स्वामी फँसवाते,

गुलछर्रे फिर आप उड़ाते।"[9]

उपरोक्त लोक गीत में अंग्रेजी शासन की बेईमानी को रेखांकित किया गया है कि कैसे देश को, जनता को बेवकूफ बनाकर उनका इस्तेमाल किया जा रहा है। हमारे देश को किस प्रकार खोखला किया जा रहा है इसका उदाहरण यह प्रतिबंधित लोक गीत है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भी अंग्रेजी सरकार के विरोध में कई द्विअर्थी रचनाएं लिखी। भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नीलदेवी आदि अनेक रचनाएं उन्होंने लिखी, इन सबके विषय देश भक्ति, राष्ट्र प्रेम की जागृति और उपनिवेश भारत की चिंता से संबंधित थे।

इस युग में सबसे अधिक गीत लिखे गए, जिसका मूल कारण था गीत के माध्यम से शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्गों तक संदेश पहुँच जाये। गा-गाकर गीतों को एक-दूसरे को प्रेषित किया जाता। स्वाधीनता सेनानियों से संबंधित अनेक रचनाएं भी प्रतिबंधित साहित्य में मिलती हैं जिसमें राम प्रसाद बिस्मिल, शहीद भगत सिंह आदि का उल्लेख किया गया है। साथ ही समाज के निम्न्न, पीड़ित व हाशिकृत समाज को भी लेखन का विषय बनाया गया। अंग्रेजी सरकार द्वारा उनपर किए जा रहे अत्याचारों का उल्लेख भी रचनाओं में दिखलाई पड़ता है।

एक गीत इस प्रकार है -

"चमकेगा, दिन दिन चमकेगा वीरों का निस्पृह बलिदान
उठा सकेगा जग के सम्मुख फिर सगर्व सर हिंदुस्तान
नस नस में बिजली दौड़ेगी सुनकर इनका गौरव गान
गरम खून खौलेगा, फड़केगी फिर शूरों की संतान"[10]

वहीं साथ ही आजादी की आशा और उम्मीद की किरण भी दिखलाई पड़ती है -

"पढ़कर यह इतिहास गुलामी का सचमुच आयेगा रोष
देखेंगे दांतों में अंगुली दिये लोग ये जीवित जोश।"[11]

स्वतंत्रता प्राप्ति की इच्छा प्रत्येक भारतीय मन के भीतर जागने लगी थी और धीरे धीरे यह चेतना पूरे भारत में फैलने लगी। लोगों ने विदेशी भाषा, विदेशी कपड़ों आदि हर विदेशी सामान का विरोध आरंभ कर दिया। स्थानस्थान पर स्वदेशी आंदोलन को बढ़ावा दिया गया । भारतेंदु लिखते हैं -

“निज भाषा उन्नति अहे

सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के

मिटत न हिय के शूल।"[12]

प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में स्वाधीनता आंदोलन, जन चेतना और निज उन्नति अर्थात राष्ट्र की उन्नति का स्वर विद्यमान था, जिसके माध्यम से तत्कालीन जन मानस को जागृत करने का प्रयास मिलता है। लेख, कविता, लोक गीत और संस्मरण के साथ- साथ कहानी और उपन्यास भी लिखे जा रहे थे, जिनमें जन जागृति मूल स्वर था। रूस्तम राय लिखते हैं-"**समस्त भारतीय भाषाओं में अनेक उपन्यास और कहानी संकलन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान प्रतिबंधित हुए हैं। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार हिंदी कथा-साहित्य से संबंधित 54 कहानियाँ मिली हैं** ।"[13] **पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र** की कहानी उसकी माँ भी हिंदी की प्रतिबंधित कहानी है। इसमें देश की दयनीय स्थिति का जहाँ एक और चित्रण है तो वही दूसरी ओर क्रांति की ज्वाला। जो व्यवस्था से, अंग्रेजी हुकूमत से मानो सवाल करती हो। कहानी में एक संवाद है - "**जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो।**"[14] उपरोक्त कथन से प्रतिबंधित साहित्य का मूल स्वर रेखांकित होता है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र उस युग के साहसी रचनाकारों में से एक है जिन्होंने अपनी कलम से पराधीन भारत में नई चेतना को जागृत की। बागी की बेटी (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), शराबी की दुकान (मुंशी प्रेमचंद), मजदूरिन (लीलावती बी.ए), फंदा (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), वह दिन (पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'), मायाजाल (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), लावारिस लाश (लक्ष्मीचंद्र वाजपेयी) का स्थान प्रतिबंधित प्रसिद्ध कहानियाँ है। इन कहानियों में मुक्ति की आकांक्षा को स्थान- स्थान पर दर्शाया गया है। इस प्रकार प्रतिबंधित हिंदी साहित्य के माध्यम से आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रही युवा पीढ़ी को रोका जा सकता है। प्रतिबंधित हिंदी साहित्य पराधीन भारत के संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है जिससे तत्कालीन समस्याओं और उसके लिए किए गए प्रयासों को जाना जा सकता है।

निष्कर्षतः 'प्रतिबंधित हिंदी साहित्य' पराधीन भारत के संघर्ष का जीवंत उदाहरण है। वर्तमान में जिस प्रकार से पश्चिमीकरण बढ़ रहा है और समाज पश्चिम के विचार, जीवन शैली आदि से प्रभावित हो रहा है हमें जरूरत है उनके असली रूप को सबके सम्मुख लाकर, भारतीय चेतना, भारत बोध को पुनः सामने लाने की। साथ ही स्वाधीनता की लड़ाई में किन किन व्यक्तित्वों का योगदान रहा, उससे परिचित कराना भी हमारा परम उद्देश्य होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नरेंद्र शुक्ल, भारत मे प्रेस एवं विधि (1556-1947), अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका, पृष्ठ संख्या -ix
2. विपिन चंद्र और अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यालय निर्देशशालय, दिल्ली विवि, 2008, पृष्ठ संख्या -56
3. ए.आर.देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ट्रिनिटी प्रकाशन, संस्करण-2016, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–183

4. https://www.hindisamay.com
5. नरेंद्र शुक्ल, अभिव्यक्ति और प्रतिबंध, अनन्य प्रकाशन, संस्करण-2017, दिल्ली, पृष्ठ संख्या -69
6. सं पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, स्वदेश पत्रिका, विजयाक, सन् -1924, पृष्ठ -1कवर पेज
7. डॉ भगवान दास माहौर, 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, कॉन्फलुएंस इंटेरनेशनल, संस्करण-2008, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-223
8. डॉ भगवान दास माहौर, 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, कॉन्फलुएंस इंटेरनेशनल, संस्करण-2008, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-234
9. स्वामी हरिशंकर, कलम का जौहर यानि स्वराज्य देवी, स्वातंत्र्य स्वर, संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश, 1997, पृष्ठ संख्या -30
10. सं कमलदत पाण्डेय, हिन्दू पंच का बिलदान अंक, कविता खंड, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2021, पृष्ठ संख्या -201
11. वही
12. हिन्दी मंजरी, अध्याय-5, यूपी बोर्ड पुस्तक कक्षा -7, पृष्ठ संख्या -27
13. रूस्तम राय, स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिन्दी कथा साहित्य, सं विभूति नारायण राय,कथा साहित्य के सौ बरस, संस्करण -2015, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली -110084
14. सं रुस्तम राय, प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, संस्करण -1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-15

■ ■ ■

Management Insights from the Bhagavad Gita

Ms. Priya Sharma

Assistant Professor
University of Delhi

The Bhagavad Gita is not just a religious text but a body of knowledge that encompasses diverse aspects of life, especially focusing on holistic well-being. The ancient wisdom from the Bhagavad Gita to the current reflects solutions not only to the conditions of man on earth but to situations in the universe as a whole exclusively valuable to the modern world, which is tormented in almost every walk of life. It is referred to as the Raja Veda, or "Rajas of Knowledge," as the fundamentals of the universe, its origin, and how everything is pervaded by certain energies is mentioned in it. Therefore, it has the authority to inspire and provide solutions to problems in any field.

Distinct research has been done on the principles of Bhagavad Gita to extract its moral implications all over the world notably the Karma theory which is recited by every man in his daily life, "Your right is to work only and never to the fruit thereof" (Chapter 2, Shlok 47) to gain the immense pleasure of his actions and not expecting the outcomes.

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥2.47॥[1]

Similarly, there are various teachings which are pertinent in other spectrums of life as well. The didactic aspect of the Bhagavad Gita continues to be significant to several scholars, both in the East and the West. Dr. Albert Schweitzer said that, "The Bhagavad-Gita is a true scripture of the human race, a living creation rather than a book, with a new message for every age and a new meaning for every civilization." Similarly, Mahatma Gandhi argued that, "The Bhagavad-Gita deals essentially with the spiritual foundation of human existence. It is a call of action to meet the obligations and duties of life; yet keeping in view the spiritual nature and grander purpose of the universe."

[1] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 2, Shlok 47: To work alone you have the right, and not to the fruits. Do not be impelled by the fruits of work. Nor have attachment to inaction.

Recently, a few Indian scholars have found the ethos of the Bhagavad Gita to be utilizable, particularly in the domain of management (Tripathi, 2007; Mahadevan, 2008; Pillai et al., 2009; Nair, 2019). It is said to be one of the best gospels for culling out several ideas that one may find effective in regulation of organizations. Despite numerous western management theories and strategies, the timeless principles in the Bhagavad Gita transcend time and culture and offer valuable insights that are based on the concept of an underlying thread connecting all other phenomena. It collectively holds all the philosophies and theories which have been discussed in the west since the evolution of management.

Management within organizations has changed subsequently in the beginning of the Industrial Revolution. Some eminent western theories are responsive to the internal and external needs of organizations. Management and corporations are products of their historical and social times, and so new theories are continuously emerging (Idemobi, 2010). The initial theories were published under the Pre-Classical School of Management focused on the efficiency of companies. Niccole Machiavelli and Sun Tzu laid down the foundational theories, which were later advanced by the Classical School of Management, whose approaches are reputed for scientific techniques. Theorists at this school aimed at the maximum output, minimum input, and reduction of inefficiency of work. Henry Fayol, who is renowned as the father of management, gave prevalent fourteen principles, which will be discussed later in this paper. At the end of the classical period, F.W. Taylor and Max Weber propounded concepts of task specialization and the latter regarding hierarchies, authority, and control within an organization. Aftermath: The Neo-Classical School of Management established people-oriented need theories; for instance, Elton Mayo, Abraham Maslow, etc. studied consumers' behavior, such as their social, safety, physiological, etc. necessities.

In the late 1980s an upsurge in globalization caused every firm worldwide to restructure its regulatory environment, and several approaches such as quantitative, qualitative, contingency, etc. kept on developing. Yet, with the advent of globalization, these theories could not stand up alone, and were not able to deal with exclusive problems within the system. The widespread problems found in different organizations are: sustenance of firms, imbalance between quality of life and work, not dealing with colleagues, customers, and people around properly, lack of motivation within the organization and at the individual level, reduced efficiency of work, abysmal leadership, inadequate team management skills, hierarchical barriers, struggle for power and authority, cynicism, scarcity of funding, imprudent finance management, overhauling, etc.

A Few popular brands that have deteriorated worldwide are Compaq, Blackberry, Nokia, Polaroid, and Lehman Brothers. Compaq, which was once the largest supplier of PCs in the 1990s, was overtaken by HP in 2002 due to not refurbishing, and similarly, Nokia got dominated by other competitor brands. Further, there was no other smartphone that people could imagine owning besides a Blackberry, which was the ultimate status symbol at that time. Nepotism had a history at Blackberry, and that resulted in subpar leadership. Additionally, it was found that the organization promoted employees

from within based more on seniority than on qualifications and genuine leadership potential, which led to its discontinuation in 2022. Polaroid was established in 1937 and is well recognized for its instant film and cameras. Its early success in cornering a market with few rivals notwithstanding, Polaroid failed to foresee the effect digital cameras would have on its film industry. Polaroid fell into its success trap, ignoring the need to expand their reach and improve their long-term viability. Consequently, the original Polaroid Corporation's assets and name were sold off and it was declared bankrupt in 2001.The largest collapse of Lehman Brothers in 2008 is known to everyone; it was ranked as the fourth-biggest investment bank in America. With $639 billion in assets and $619 billion in debt, this credit crisis marked the biggest bankruptcy in history.

For a variety of products and services, the Indian market is regarded as one of the lucrative ones. Due to its size and diversity, India is a good place for a wide range of brands and services to launch their products. But several trendy startups and prevalent Indian firms were forced to either shut down or remove their recently released products, such as Kingfisher Airlines, Chevrolet, Yes Bank and startups like Yumist, Stayzilla, Overcart, Lido-Learning etc.

Kingfisher Airlines was formed by the notorious Vijay Mallya and had its headquarters in Bangalore. Every day, the airline operated about 400 flights. But the brand was unable to meet customers' satisfaction and it lacked deputation. Eventually, it was shut down entirely due to a growing number of consumer complaints and the owner's neglect. In 2017, Chevrolet closed all of its operations in India. Even after producing several excellent cars, the challengers like Maruti Suzuki, Honda, and other established sharks were officious for it. In addition, they incurred significant losses and were unable to resurface in the Indian market with any new car models. Similar to Lehman Brothers, Yes Bank also declined in its financial position due to conflicts between the founders and is striving to regain its shares.

For the economic growth of the nation, newly launched startups should review the earlier failed startup cases so that they can focus on the growth of their products instead of reckless launching. An estimate states that over 5 million companies are established annually. But only 10% of these startups end up being successful over the long term. For instance, Yumist, a noticeable brand to deliver home-based cooked food, was launched in 2014 and dissolved in 2017 due to insufficient funding. Another startup Stayzilla was well ahead of its time. People weren't prepared for high-fidelity technologies like this. Nevertheless, the business managed to get some time with the funds it was given. However, as more people became accustomed to making reservations online, new rivals with better offers and prices appeared. Later on, Stayzilla was wrecked by legal issues and a lack of emphasis on expanding the company. The first fintech company in India to offer a platform for buying reconditioned, overstocked, and pre-owned goods was Overcart, which was established in 2012. On this platform, users could buy and sell their technological gadgets. Despite receiving a sizable amount of funding, it was unable to turn a profit. The lack of commercial focus and poor quality of items resulted in its closure. Numerous startups,

such as Lido Learning, ShopX, Houseparty, LoanMeet, DocTalk etc., were short-lived due to above mentioned failed management practices.

Hence, western theories are unable to provide solutions to these hindrances alone and stunting these days due to distinct cultural, social and economic conditions of different nations. They are incapable of contributing much to the sustainable growth of organizations so it becomes quintessential for firms to find alternative paradigms that align with their ever-changing management practices.

As mentioned earlier, the Bhagavad Gita holds all the principles of management and can be utilizable worldwide. It can inspire management practices in multifold ways, such as its application of teachings in business, deriving insights from its principles of bondage and liberation, the importance of servant leadership, understanding invisible energies in organizations, and the concept of Dharma, Bhakti, Yoga, etc. theories in business.

The elucidations can be derived from five theories of the Bhagavad Gita which are Dharma, Bhakti, Karma, Jñāna and Sankhya Yoga. There should be harmony in all these five notions to maintain the survival of an organization for the long term.

The application of the concept of Dharma in business can be understood as an individual's obligation towards work. It is likened to the inherent skill or role of an individual, which, when aligned with market demands, leads to success. When individuals are in their natural roles, they can contribute significantly to a business. One should be hired on the basis of their particular skill, which comes naturally to them, like flying to a bird or swimming to a fish, as mentioned in the swa-dharma concept in the Bhagavad Gita.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥18.47॥ [2]

It states that it is better to do one's own dharma, even though imperfectly, than to do another's dharma, even though perfectly. This will lead to the identification of one's natural skills and a better fit for the firm, reducing one's work pressure and ensuring quality work life. The Bhagavad Gita also provides a holistic map to identify the causes of adharma, i.e., defects, by examining both the organization and its internal and external dimensions. The hindrances can be termed vishada, in this context, which is the main cause that leads to wisdom ultimately. Furthermore, the pain of customers,

[2] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 18, Shlok 47: Better is one's own duty, though ill done, than the duty of another, though well-performed.

expelled employees, and not dealing with colleagues, customers, and people around them properly could be resolved through Bhakti theory.

The Bhakti theory emphasizes on the service backed by uttermost knowledge, empathy, and emotions. It focuses on the customer's requirements and how they are the main assets of any business. Additionally, this is important because management often gets detached from the dayto-day customer issues, and hence empathy is necessary to understand and address the emotions behind those problems.

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत: ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।। 18.55 ।।[3]

Through devotion, one can attain the truest form of knowledge, similarly, only through Bhakti towards your customers can one understand the vision of the organization vividly and work towards the welfare of society. Likewise, the Japanese concept of Kaizen also states that going to the source of the problem means putting oneself in the customer's shoes and feeling their emotions. By understanding the emotion behind customer requirements and issues, businesses can create successful products and experiences. Another internal issue within organizations is the expulsion of employees, so it is crucial for senior leaders to involve those people who are removed from the companies as they are still connected to the field and to try to bring out emotional intelligence rather than self-doubt in them, like Krishna supervised Arjuna.

The Sankhya Yoga discusses the concept of breakdown analysis and its application in organizational management. An analogy can be drawn from the Bhagavad Gita, where Arjuna was in a dilemma and Krishna helped him to comprehend that the soul is constant and individual bodies get changed to identify permanent and temporary parameters in an organization. It is crucial to recognize such parameters, as they will prevent an organization from going through cycles of deviation and bankruptcy. It is significant to eliminate deviations, such as excessive individual wealth or enhancement at the expense of customer service, which can lead to the complete covering or loss of the organization's soul. Also, the extreme problem of short termism is largely due to the presence of quarter-on-quarter-based profit in the companies. The solution to this can be found in learning the notion of time, which is essential for long-term survival.

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

[3] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 18, Shlok 55: Through devotion, he comes to know me fully - who and what I am in reality, who I am and how I am. Knowing me thus in truth, he forthwith enters into me.

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ 2.13 ॥[4]

One should train his mind for longer parameters instead of temporary goals. They should think of organizations as a generational treasure that has to be passed on instead of consuming all the resources for quarterly profits. The other biggest constraint for modern management is the mindset towards performance metrics and assessment. The employees are unable to understand the concept of organization mind and the importance of honoring sincere failures within an organization.

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ 2.48 ॥[5]

Arjuna was taught the sense of equanimity through the Karma Yoga theory that failure is a natural part of the learning process and should be celebrated when it is sincere, not a result of negligence. One should realize the importance of mind connectivity with organizations and quite literally conquering the mind during the initial stages of forming an organization. The ultimate goal should be to see the organization as a living being and to take care of its critical organs, creating a culture that fosters immense momentum and productivity. Also, all the other teachings of the Bhagavad Gita are exemplary for leader-servant service in any field of life.

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्ध: कालेनात्मनि विन्दति ॥ 4.38 ॥[6]

Lastly, Jñāna Yoga can be interpreted as the history and knowledge of one's institute. There is no action that will be fulfilled unless it is documented in the past of the organization, which will keep its soul intact. Skills like knowledge utilization, senior honoring, present focus, and historical and contextual knowledge help in understanding their background to create a strong framework for long-term success.

---

[4] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 2, Shlok 13: Just as the self-association with a body passes through childhood, youth and old age (pertaining to that body), so too (at death) It passes into another body. A wise man is not deluded by that.

[5] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 2, Shlok 48.

[6] Srimad Bhagavad Gita, Chapter 4, Shlok 38: For there is no purifier here to knowledge; he that is perfected in Karma Yoga finds this (knowledge) of his own accord in himself in due time.

Other theories of the Bhagavad Gita, such as Moksha, Dhyana, Yoga, invisible energies, etc., can also be utilized to understand concepts like freedom from unwanted tendencies, organization as a collective being, longevity, and connectivity between various teams, departments, and stakeholders within an organization for better management. Hence, it is thoroughly relevant to modern management and can help solve the vexing issues. However, it should not be used for narrow goals such as profit generation and personal greed. Instead, it can inspire and guide businesses with broader objectives, like internal and external wealth creation, social responsibility, and institution building. The Bhagavad Gita is especially useful for businesses with a holistic and elevated goal. As a timeless scripture, it goes beyond specific scenarios, offering insights on relieving pain and liberating from unholy emotions and thoughts.

In conclusion, the Bhagavad Gita offers solutions to most of the management practices. Also, it includes the fourteen principles stated by Henry Fayol, which are unity of direction, division of work, discipline, equity, etc. in theories derived from the Bhagavad Gita that require deep contemplation and conviction of their usefulness. In one of the studies, Anoop Mohan (2015) made it clear that in order to conserve and pass on the knowledge of our ancient scriptures to our future generations, we should make a significant effort to incorporate their teaching into elementary education. Recently, Gujarat has included the Bhagavad Gita as a primary text in class 7, and the New Education Policy 2020 has the same propaganda to include ancient knowledge in the current curriculums. Therefore, ancient Indian literature has enormous potential to deal with all universal problems, and modern management thinkers should embrace the Bharatiya ethos, which tries to fill the gaps in the existing framework of management. The Bharatiya worldview present in different texts has always benefited the human race and will do so for years to come.

References:

1. Idemobi, Ellis I. “Theory and Practice of Management, Enugu-Nigeria: Gostak”. Printing & Publishing Co.Ltd, 2010.
2. L. Lavanya. “Henry Fayol’s Principles of Management and Bhagavad Gita: A Hermeneutics Study”. Indian Journal of Research 10.3 (2021).
3. Mahadevan, B. “Management Lessons from the Bhagavad Gita”. The Vedanta Kesari, 2008, 118-121.
4. Nair. Awasthi. “Identity Crisis and Intrapersonal Conflict Management: The Bhagavad Gita Way”. Adalya Journal 8.10 (2019).
5. Pillai. Smitha. “Management Principles from Bhagavad Geeta an Ancient Scripture of India". International Journal of Business and Management Invention (IJBMI) 8.2 (2019). 72-75.
6. The Bhagavad Gita. Gorakhpur: Gita Press, 2007.

7. Tripathi, Shiv K. "Managing Business as a Spiritual Practice: The Bhagavad Gita way to Achieve Excellence through Perfection in Action". New Delhi: Macmillan India Ltd, 2007. 221-231.

Reading List:

1. Agogbua, Stanley N., Ebele Anthonia Anekwe, and Hauwa Abugbum. "Evolution of Management Thought: A continuous or discontinuous process". European Journal of Business 9.35 (2017).
2. Mohan, Anup, Implications of Bhagavad Gita in Management, 2015. Retrieved from https://www.slideshare.net/AnupMohan1/bhagavad-gita-and-management-anoop
3. Priyadarshi, Rajesh. "6 Damn Reasons That Make or Break a Business Organization!". 2020. Retrieved from www.linkedin.com/pulse/6-damn-reasons-make-break-business-organisationpriyadarshi-sangwan.
4. Singh, Lakshya. "Failed Startups in India | Why Indian Startups Are Not Successful". StartupTalky, 2023. Retrieved from startuptalky.com/why-startups-fail-case-study.

■ ■ ■

भारत का योगदान वैज्ञानिक योगदान : अष्टाङ्ग आयुर्वेद

अनामिका सिंह
स्नातक संस्कृत विशेष
इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आयुर्वेद शब्द का सामान्य अर्थ है- **" आयुषो वेदः आयुर्वेदः"** अर्थात् आयु का वेद। सुश्रुत संहिता के टीकाकार डल्हण ने भी आयुर्वेद की उत्पत्ति को इस प्रकार प्रतिपादित किया है, **आयुः शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगः, तदस्मिन् आयुर्वेदै विद्यते जायते अनेनेति आयुर्वेदः।**[1] आयुर्वेद की अनेक परिभाषाएँ आयुर्वेदज्ञों ने स्वविवेकानुसार प्रस्तुत की है, जिनमें से आचार्य चरक द्वारा वर्णित परिभाषा अधिक सार्थक प्रतीत होती है;

हिताहिनं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यंत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥[2]

अर्थात् जिस शास्त्र में उपादेय सुख आयु और हित आयु एवं हेय दुःख आयु तथा अहितायु का विचार हो तथा आयु के सम्यक् मान का विचार हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं। किसी भी कार्य को करने के पीछे एक उद्देश्य अवश्य होता है। शास्त्र में कहा भी गया है कि **'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोपि न प्रवर्तते'** अतः भारतीय संस्कृति में ग्रन्थ-निर्माण किसी विशेष उद्देश्य को लेकर किया जाता है। आयुर्वेदज्ञों ने पुरातन समय से ही आयुर्वेद के दो प्रयोजन बताए हैं प्रथम स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं द्वितीय मनुष्य के रोगी हो जाने पर रोग का उपचार करना। महर्षि चरक आयुर्वेद का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि- **प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य विकारप्रशमनं च** ।[3]

यह आयुर्वेदिक परम्परा हमें प्राप्त कैसे हुई इसमें अनेक मतभेद देखने को मिलते है कुछ विद्वानों का कहना है ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया। चरकसंहिता में इसका स्पष्ट विवेचन किया गया है **'ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः'**[4] अर्थात् ब्रह्मा ने आयुर्वेद का उपदेश दिया। दक्ष प्रजापति से यह ज्ञान की धारा दो भागों में विभक्त हो गई जिसमें पहले थे अश्विनीकुमार और दूसरे भास्कर सम्प्रदाय के १२ शिष्य । भास्कर सम्प्रदाय से विद्या कैसे आगे बड़ी इसका उल्लेख अभी प्राप्त नहीं होता लेकिन, अश्विनीकुमार ने आयुर्वेद की विद्या इन्द्र को प्रदान की इन्द्र ने स्वयं इस ज्ञान की गंगा को पुनः दो भागों में विभक्त किया सर्वप्रथम

भरद्वाज को यह विद्या मिली और अनन्तर धन्वन्तरि को। भरद्वाज ने आयुर्वेद का ज्ञान पुनर्वसु आत्रेय को दिया, आत्रेय ने उपदेष्टा के रूप में इस ज्ञान को अग्निवेश को दिया, अग्निवेश ने इस ज्ञान को महर्षि चरक को दिया और चरक ने इस ज्ञान को दृढ़बल को दिया। उसी प्रकार धन्वन्तरि ने आयुर्वेद का ज्ञान वृद्ध सुश्रुत को दिया, वृद्ध सुश्रुत ने सुश्रुत को दिया, सुश्रुत ने नागार्जुन को इस प्रकार आयुर्वेद के ज्ञान की गंगा का विस्तार हुआ।

ऋग्यजु सामाथर्वाख्यान् दृष्टा वेदान् प्रजापति।

विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदमं चकार सः।।

कृत्वा तु पञ्चमं भास्कराय ददौ विभुः।

स्वतन्त्रसंहितां तस्माद् भास्करश्च चकार सः।।

भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वंहिताम्।

प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः।।[5]

आयुर्वेदीय संहिताओं में आयुर्वेद के अष्ट अङ्ग स्वीकृत है। सर्वप्रथम सुश्रुतसंहिता में इन अङ्गों का नामोल्लेख प्राप्त होता है;

तस्यायुर्वेदस्यांगान्यष्टौ, तद्यथा- कायचिकित्सा, शालाक्यं
शल्यापहर्तृकं, विषगरवैरोधिकप्रशमनं, भूतविद्या, कौमारभृत्यकं, रसायनं वाजीकरणमिति।[6]

वाग्भर ने इन चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता को मिलाकर अष्टाङ्ग, आयुर्वेद का ग्रन्थ बनाया, जिसमें चरक से एवं सुश्रुत से शल्य चिकित्सा को ग्रहण किया;

अष्टांगवैद्यकमहोदधिमन्थनेन योऽष्टांगसंग्रहमहामृतराशिराप्तः।

तस्मादनल्पफलमल्पसमुद्यमानां प्रीत्यर्थमेतदुदितं पृथगेव तन्त्रम्'।।[7]

१. शल्यतन्त्र (सर्जरी) :-

महर्षि सुश्रुत ही प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने शल्यतन्त्र के वैचारिक मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिसे आधार बनाकर प्राचीन भारतवर्ष में शल्यकर्म विविध प्रकार से किए जाते है। सर्वप्रथम महर्षि सुश्रुत ने ही शवच्छेदन (पोस्टमॉर्टम) विधि का वर्णन किया था। वर्तमान प्लास्टिक सर्जरी विषयक ग्रन्थों में महर्षि सुश्रुत की 'नासासंधान विधि' का वर्णन (मेथड ऑफ़ राइनोप्लास्टी) नाम से किया जाता है।

शरीर से नाना प्रकार के शल्यों को निकालने की विधि तथा शस्त्र, यन्त्र, अग्नि या क्षार कर्म द्वारा सम्पादित उपचार को शल्य चिकित्सा कहते हैं।

'शल्यनाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपाशुलोहलो
अस्थिवालनखपूयास्त्रावदुष्टव्राणांतर्गर्भशल्योद्धरणार्थं,
यन्त्रशस्त्रक्षाराग्नि- प्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थं च' ।[8]

२. शालाक्य तन्त्र (कॉप्टमोलॉजी इंक्लूडिंग ई.एन.टी एंड डेंटिस्ट्री) :-

राजा निमि और राजा जनक को शालाक्य तन्त्र के प्रवर्तक माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि शालाक्यतन्त्र की जन्मभूमि विदेह (मिथिला) है, जहाँ मिथिला के राजाओं के संरक्षण में इसका पालन-पोषण हुआ। शालाक्यतन्त्र आयुर्वेद का वह अंग है जिसमें कान, आँख, नाक, मुख आदि जोकि जत्रु अर्थात् कण्ठ से ऊपर के अंग हैं उनका आश्रय लेकर उत्पन्न हुए रोगों को दूर करने के उपायों का वर्णन किया जाता है। सुश्रुत ने कहा है कि-

शालाक्यं नामोर्ध्वजत्रुगतानां श्रवणनयनव-
दनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ।[9]

३. कायचिकित्सा (जनरल मेडिसिन) :-

आयुर्वेद का सर्वप्रमुख तथा अद्यतन सबसे जीवन्त अंग 'कायचिकित्सा' है। आयुर्वेदीय चिकित्सा-विज्ञान अत्यन्त व्यापक है। अतः कायचिकित्सा आयुर्वेद का वह विशिष्ट अंग है जिसका लक्ष्य उन रोगों का उपचार जो अन्न तथा अन्तरग्नि द्वारा, उसके पाक तथा चयापचय की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। उपर्युक्त अर्थ चक्रपाणि एवं गंगाधर भी स्वीकार करते हैं-

कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा कायचिकित्सा ।

कायचिकित्सेति कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा ।।

४. भूतविद्या (साइको-थेरेपी) :-

जिस अंग द्वारा देवता, पितृ, पिशाच, राक्षस तथा ग्रह आदि के आक्रमण से आक्रान्त मनुष्यों के कष्ट को दूर करने के लिए, उन देवादि के लिए पूजा, उपहार, बलि आदि के विधान द्वारा व्याधि-शान्ति का उपचार किया जाता है, उसे 'भूतविद्या' कहते हैं। सुश्रुतसंहिता में कहा गया है कि-

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनाग-
ग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम् ।। [10]

५. कौमारभृत्य (पीडियाट्रिक्स) :-

काश्यपसंहिता में आयुर्वेद के आठ अंगों में कौमारभृत्यतन्त्र को श्रेष्ठ अंग स्वीकार किया गया है- **कौमारभृत्यमष्टानां तन्त्राणामाद्यमुच्यते ।** वस्तुतः शिशु पर ही सम्पूर्ण जगत आधारित है इसलिए उसका महत्त्व उचित ही है। कौमारभृत्य में बच्चों के भरण-पोषण की व्यवस्था, धात्री परीक्षा, दुष्ट दूध विशोधन, ग्रहजन्य व्याधियों का उपचार तथा बालकों के रोगों की चिकित्सा का विधान किया जाता है। सुश्रुतसंहिता में कौमारभृत्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्री क्षीरदोषसंशोधनार्थं
दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ।। [11]

कौमारभृत्य में तीन प्रकार के बालकों का उपचार किया जाता हैं:-

- दूध पीने वाले (**क्षीरप**) :- जन्मोपरान्त से प्रथम छह महीने तक के शिशु ।
- दूध और अन्न खाने वाले (**क्षीरान्नाद**) :- छह महीने के बाद दो वर्ष तक के शिशु ।
- केवल अन्न पर निर्भर रहने वाले (**अन्नाद**) :- दो वर्ष के बाद के बच्चे, जिन्होंने माँ का दूध पीना बन्द कर दिया है।

६. अगदतन्त्र (टॉक्सिकोलॉजी) :-

आयुर्वेदीय संहिताओं में अगदतन्त्र के दो नाम उल्लेखित है, चरकसंहिता में विषगरवैरोधिकप्रशमन, वाग्भट ने अष्टाङ्गसंग्रह व अष्टाङ्गहृदय में दंष्ट्राचिकित्सा के नाम से अगदतन्त्र का विशद रूप से वर्णन किया है। सुश्रुत ने अगदतन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि साँप, कीट (कीड़े), लूता (मकड़ी), मूषक आदि से हँसे हुए, नाना प्रकार के स्वाभाविक, कृत्रिम और संयोगज विष से आक्रान्त मनुष्यों का प्रतिकार करने वाले अंग को अगदतन्त्र कहते हैं।

अगदतन्त्रमं नाम सर्पकीटलूतामूषिकादि

दंष्टविषव्यञ्जनार्थं विविधविषसंयोगोपशमनार्थं च।[12]

७. रसायनतन्त्र (रेजेनेशन एंड जेरियाट्रिक्स) :-

सम्पूर्ण धातुओं को आप्यायित कर शरीर एवं मन को पूर्णतया स्वस्थ रखना रसायन तन्त्र का उद्देश्य हैं। सुश्रुतसंहिता में रसायनतन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जिस शास्त्र में लम्बे समय तक तारूण्यावस्था बनाए रखने, बल तथा बुद्धि की वृद्धि के लिए, शरीर में रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए और रोग का शमन करने के लिए औषधियों, पथ्य आहार-विहारों का वर्णन किया गया हो, उसे रसायनतन्त्र कहते हैं।

रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसमर्थं च । [13]

८. वाजीकरण (साइंस ऑफ़ फर्टिलिटी एंड विरिलिटी) :-

आयुर्वेद के इस अंग का अभिप्राय पुरुष में पुंस्त्व शक्ति में वृद्धि करना है। यह अंग प्रमुख रूप से पुरुषों से ही सम्बन्धित है, आयुर्वेद में स्त्रियों के लिए ऐसी औषधियाँ नहीं मिलती। अत्रिपुत्र ने स्त्री को ही प्रधान वाजीकरण स्वीकार किया है, क्योंकि उसमें ज्ञानेन्द्रियों के सभी विषय विद्यमान होते हैं। स्त्री में प्रीति, सन्तान, धर्म, अर्थ, लक्ष्मी, लोक-परलोक सभी विद्यमान हैं।

सुश्रुतसंहिता में वाजीकरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य अल्पवीर्य अर्थात् स्वभाव या व्याधियों के कारण शुक्र की मात्रा का अल्प होना, दुष्टवीर्य (अशुद्ध वीर्य), क्षीणवीर्य (शुक्राणुओं की संख्या कम होना) एवं शुष्कवीर्य से आक्रान्त है, उनमें क्रमशः अल्पवीर्य, दुष्टवीर्य, क्षीणवीर्य और शुष्कवीर्य के उपायों तथा अतिशय आनन्द विधियों का जिस शास्त्र में वर्णन हो, उसे वाजीकरण तन्त्र कहते हैं।

वाजीकरणतन्त्रं नामाल्पदुष्टक्षीणविशुष्करेतसामाप्यायन-

प्रसादोपचयजननिमित्तं प्रहर्षजननार्थं च ॥[14]

निष्कर्ष:- अतः प्राचीन काल से ही आयुर्वेद के आठ अंगों द्वारा मनुष्य को किस प्रकार स्वस्थ रखा जाए, किस प्रकार मानसिक एवं शारीरिक रोगों का प्रथमावस्था में ही उपचार किया जाए, इसका विशद वर्णन किया गया है। परन्तु अद्यतन आयुर्वेदीय बृहत्त्रयी को छोड़कर अन्य अंगों में इन्हीं का अधिकतया पुनरावलोकन ही मिलता है तथा कुछ ग्रन्थ अपूर्ण हैं।

सन्दर्भः-

1. सुश्रुत संहिता की टीका निबन्धसंग्रह व्याख्या
2. चरक संहिता सूत्र 1/41
3. चरक संहिता सूत्र 30/26
4. चरक संहिता सूत्र ¼
5. ब्रहमवैव्रत पुराण, ब्रह्मखण्ड अ०१६
6. सुश्रुत संहिता सूत्र 1/6
7. अष्टाँगहृदय , उ० 40/80
8. सुश्रुत संहिता सूत्र १/१
9. सुश्रुत संहिता सूत्र १/८/२
10. सुश्रुत संहिता सूत्र १/४
11. सुश्रुत संहिता सूत्र १/८
12. सुश्रुत संहिता सूत्र १/९
13. सु ०सं०, सू० 1/7/7; रसायनञ्च तज्ज्ञेयिं यज्जराव्यासिनाशनि्। शाङ्गथिरसंहिता
14. सु०सं०,सू० 1/7/8; वाजीवातिबलो येन यात्यप्रमतहतो सस्त्रयः । भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां वाजीकरणमेव तत् ॥ येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिल्लभते नरः । ब्रहेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत्॥ च०स०, चि ० 2

पुस्तक समीक्षा

■ ■ ■

भारत का संविधान: अनकही कहानी, रामबहादुर राय, प्रभात प्रकाशन, 2021

शिवम् वार्ष्णेय

शोधार्थी

राजनीति विज्ञान विभाग

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में शासन संचालन हेतु विभिन्न विचारकों द्वारा लिखित दस्तावेजों की एक सनातन परम्परा रही है जिसके वाहक वैदिक ग्रंथों से लेकर विभिन्न स्मृतियाँ, नीतिग्रंथ, अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थ रहें हैं इसी क्रम में आधुनिक लोकतंत्रात्मक संवैधानिक व्यवस्थाओं के लिए "भारत का संविधान" एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं जीवंत दस्तावेज है। भारत के संविधान की भाषा मूलतः क़ानूनी होने के कारण अकादमिक अध्येताओं व आम जनमानस के लिए इससे सम्बंधित अनेक सरलीकृत पुस्तकों की रचना की गयी है जिनमें ग्रेनविल ऑस्टिन, द इंडियन कांस्टीट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड इंडिया (1966), सुभाष काश्यप, हमारा संविधान: भारत का संविधान और संवैधानिक विधि,नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत (1996), दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान: एक परिचय, लिक्सिस नेक्सस, नई दिल्ली (14 वा संस्करण 2022) आदि प्रमुख हैं, परन्तु भारतीय संविधान की लगभग समस्त महत्वपूर्ण पुस्तकें प्राय: औपनिवेशिक वृतांत प्रस्तुत करती नज़र आती हैं तथा संवैधानिक तथ्यों मात्र को ही सरलीकृत स्वरुप में प्रस्तुत करती हैं।

राम बहादुर राय महोदय द्वारा रचित पुस्तक "भारतीय संविधान: अनकही कहानी" को प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2021 में प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक में कुल 501 पृष्ठ एवं 51 संक्षिप्त अध्याय हैं। पुस्तक के लेखक राम बहादुर राय मूलतः एक पत्रकार हैं, लिहाजा पत्रकारिता की भावना के अनुरूप इस पुस्तक के लेखन में लेखक की विश्लेषणात्मक दृष्टि एवं खोजी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता इस सन्दर्भ में पूर्वरचित पुस्तकों से अलग स्वरुप में इसे प्रस्तुत किया जाना है। यह पुस्तक भारत के संविधान पर लिखी गयी अन्य पुस्तकों की भांति सिर्फ संवैधानिक विधियों के सार रूप को ही प्रस्तुत नहीं करती अपितु यह भारत के संविधान के बनने का ऐतिहासिक वृतांत, कुछ महत्वपूर्ण घटनाक्रम, कुछ अचंभित करने वाली रहस्यमयी योजनाएं, भारतीय संविधान के निर्माण में शामिल व्यक्तियों के संघर्ष और उनके प्रभाव तथा संविधान सभा में संविधान निर्मिति के दौरान हुए वाद-विवाद का बड़े रोचक ढंग से विस्तृत वर्णन करती है। यह पुस्तक संविधान यात्रा के प्रामाणिक एवं अपरंपरागत तथ्यों से भी पाठकों को अवगत कराती है। जो संविधान वर्तमान में पाठकों के समक्ष है, वह कैसे, किन परिस्थितियों व अवस्थितियों में बना है यह पुस्तक इन तथ्यों को भी आलोकित करती है।

यह पुस्तक, लेखक राम बहादुर राय द्वारा भारतीय संविधान पर रचित कुल 51 लेख, जोकि प्रारंभत: "मंथन" पत्रिका द्वारा तत्पश्चात "हिंदुस्तान समाचार वार्षिकी" एवं पाक्षिक पत्रिका "यथावत" द्वारा प्रकाशित किये गये थे, का एक अनुपम संग्रह है ; लेखक द्वारा पुस्तक की भूमिका में भी यह स्पष्ट किया गया है। इस पुस्तक के द्वारा संविधान निर्मिति के दौरान के प्रसंग को संदर्भों के आलोक में गहनता से समझा जा सकता है। यह पुस्तक मूलतः संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट को आधार मानकर व उस समय के अन्य संदर्भों को साथ समायोजित कर लिखी गयी है ताकि पाठकगण न सिर्फ संविधान निर्माण की प्रक्रिया, उनकी विभिन्न मुद्दों पर बहसे आदि को समझ सके अपितु तत्कालीन परिप्रेक्ष्य पर भी गहरी समझ बना सकें।

पुस्तक के अध्याय 1 व 2 में संविधान सभा की प्रारंभिक पृष्ठभूमि पर चर्चा की गयी है जिसमें लेखक द्वारा संविधान सभा के प्रारंभ होने की दिनांक 9 दिसम्बर 1946 से पूर्व व उस दिन की सदस्यों की आकांक्षाओं व उम्मीदों के वर्णन करते नजर आते है साथ ही उस विलक्षण प्रहर को समझाते नज़र आते हैं। इसके पश्चात अध्याय 3 से अध्याय 9 तक, लेखक द्वारा संविधान सभा के प्रथम चरण में सदस्यों द्वारा विभिन्न मुदद्दों मुख्यतः पंडित नेहरु द्वारा 13 दिसम्बर 1946 को प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव पर दिए गये वक्तव्यों को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन आवश्यकताओं व मुद्दों को संदर्भित किया है। अध्याय 10 संविधान सभा के दूसरे चरण के भाषणों के साथ प्रारंभ होता है तथा इसमें मुख्यतः उद्देश्य प्रस्ताव पर डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के लम्बे वक्तव्य को बताया गया है। अध्याय 11 से लेकर 15 तक लेखक द्वारा संविधान सभा के समक्ष मौजूद प्रमुख चिन्ताओ को रेखांकित किया गया है जिसमें मुस्लिम लीग का कार्य बहिष्कार, उद्देश्य प्रस्ताव पर संशोधन प्रस्ताव की वापसी भारत विभाजन की नीव आदि पर सारगर्भित चर्चा की गयी है। अध्याय 16 से 19 तक तत्कालीन प्रमुख वैश्विक सन्दर्भों के साथ नेहरु जी की कुछ भूलों के ऐतिहासिक आधार पर विवेचित किया गया है। अध्याय 20-21 संविधान निर्माण की दिशा में साल 1934 की महत्ता को भी संदर्भित करने के साथ साथ महात्मा गाँधी के लिए दो बड़े प्रश्नों को संदर्भित करता है। अध्याय 22 उद्देशिका के निर्माण में सहायक पूर्व ऐतिहासिक पहलों व संदर्भों की व्याख्या करता है। अध्याय 23 से लेकर 25 संविधान सभा को न चलने देने व उसे भंग करने जैसे मुस्लिम लीग के कुत्सित प्रयासों से साक्षात्कार करता है जिसमें जिन्ना चर्चिल संबंधों व कैबिनेट मिशन योजना के जाल का विषद विवेचन किया गया है।

अध्याय 26 से 30 में संविधान सभा के बचने की कहानी से लेकर संसदीय राजनीति व गाँधी जी के वैश्विक संबंधों पर आधारित है। इसके पश्चात अध्याय 31 से 35 संविधान सभा के संक्रमण काल की चर्चा करता हुआ लार्ड माउंट बेटन के पुनः भारत आने की कहानी व भारत को सत्ता हस्तांतरण के साथ बटवारे के दंश को व्याख्यायित करता है। अध्याय 36 से 40 विभाजन पश्चात उपजी साम्प्रदायिकता तथा तत्काल में संविधान सभा में डॉ0 अम्बेडकर के भाषण एवं संविधान सभा में असंतोष आधारित पूर्णाहुति से पाठकों को अवगत कराता है। अध्याय 41 से 43 पाठकों को बताता है कि किस प्रकार संविधान सभा से स्वयं उसके सदस्यों को व जनता को अनेक अन्य आकांक्षाएं थी जिनको मिश्रित भाव के साथ सभी नें स्वीकार किया। अध्याय 44 व 45 भारत के संविधान को जनता का संविधान घोषित करते हैं। अध्याय 45 से 47 संविधान सभा के अंतिम चरणों में हुये संविधान सभा के वाद विवाद से पाठकों को अवगत कराते हैं। उपर्युक्त समस्त अध्याय संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर ही मूल सन्दर्भों

को आधार बनाकर लिखे गये हैं। अध्याय 48 संविधान निर्माण के अनेक ऐतिहासिक संदर्भो की चर्चा करते हुए उसे "देश की बहस" के नाम से पाठकों के समक्ष उद्धृत करता है। अध्याय 49 संविधान पर लिखी गयी किताबों से ओझल संविधान सभा के विस्मृत योद्धा संविधान सभा के प्रधान निर्माता बेनेगल नरसिंह राव को समर्पित है जो उनके जीवन परिचय से लेकर संविधान निर्माण में उनके योगदान का विषद विवेचन करता है। अध्याय 50 संविधान निर्माण के पूर्ण होने की कहानी व सरदार पटेल के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा गया है तथा पुस्तक का अंतिम अध्याय 51 "राजद्रोह की बापसी" के नाम से अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों को रेखांकित करता नज़र आता है।

इसके अतिरिक्त पुस्तक के अंत में सम्पूर्ण संविधान सम्मत घटना क्रम का क्रोनोलोजी व संविधान निर्माताओं के श्रीमुख से ज्वलंत मुद्दे नामक 2 महत्वपूर्ण परिशिष्ट दिए गये हैं जो की पाठको के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होंगे। कुल मिलाकर संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट को आधार बनाकर लिखी गयी यह पुस्तक भारत के संविधान अध्येताओं ले लिए एक मील का पत्थर साबित होगी।

विविधा

■ ■ ■

भुला नहीं सकेंगे हम

चित्रा देवी

शोध छात्रा

राजनीति विज्ञान विभाग

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भुला नहीं सकेंगे हम

शहादत को तुम्हारी

जीवन को सार्थक समझेंगे हम

गर परिवार की जिम्मेदारी

उठा पाये तुम्हारी

दुनिया से शरीर गया है

बस तुम्हारा स्मृतियो में

तुम्हें हमेशा जिन्दा रखेंगे हम

शहादत को तुम्हारी

भुला नहीं सकेंगे हम।

कहा था तुमने हँसके विदा करना तुम्हारे ऐसे जाने पर,

आँसूओ को भला कैसे रोकेंगे हम,

शहादत को तुम्हारी

भुला नहीं सकेंगे हम।

■ ■ ■

माँ

काव्या

शोध छात्रा

राजनीति विज्ञान विभाग

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

कृष्ण पक्ष की अंधेरी रातों में,

पूर्णिमा की चांदनी सी माँ उलझे-उलझे धागों में,

एक सुलझे धागे सी माँ।

ज्येष्ठ की तपती धूप में,

ठंडी हवा सी माँ।

जब-जब भूख लगती भारी,

अन्नपूर्णा बन आ जाती माँ

जीवन के कठिन पथ पर,

मार्गदर्शक बनकर राह दिखाती माँ।

जी चाहता है फिर से बच्ची बनकर,

तेरा आँचल पकडकर,

तेरे पीछे भागू माँ।

ना जाऊँ मैं मंदिर, गुरुद्वारा,

सारे तीर्थ तेरो चरणों में माँ।

तेरे चरणो में शीश झुकाऊं माँ ।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ 11 ॥
ईशावास्योपनिषद्

अर्थात जो विद्या और अविद्या – इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र समुद्रमंथन के सामान ज्ञान मंथन का वह सागर है जहाँ विष रूपी अज्ञान को दूर कर अमृत रूपी ज्ञान संचार होता है।
समाज के प्रत्येक वर्ग के बुद्धिजीवी जैसे शिक्षाविद, प्राध्यापक, शोधार्थी, प्रशासक, उद्यमी, व्यवसायी, पत्रकार, लेखक, चिन्तक, प्रबुद्ध जन इस ज्ञान मंथन रूपी महासागर में वासुकी रूपी बुद्धि द्वारा विभिन्न विषयों के मंथन से समाज को नवीन दिशा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र में जहाँ अध्ययन की सतत प्रक्रिया गतिमान रहती है, वहीं जीवंत सोच, सकारात्मक ऊर्जा और सक्रियता भी अखंड रूप से प्रवाहित रहती है। अध्ययन केंद्र शोध की वह प्रयोगशाला है जहाँ समाज में फैले वैचारिक संभ्रमों को तार्किकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परख कर सत्यता का बोध व दर्शन किया जाता है। समाज से जुड़ा प्रत्येक वर्ग ज्ञान पिपासु भी स्व और स्वत्व के विषयों जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व मानसिक द्वंद्वों को दूर कर नई चेतना का प्रवास अध्ययन केंद्र में पाता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र न केवल समाज में फैले संभ्रम को शोध की प्रयोगशाला में दूर करने का प्रयास कर रहा है अपितु समाज के जागृति हेतु तात्कालिक विषयों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, व्याख्यान, प्रेरक संवाद और कार्यशाला भी आयोजित करता रहता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र सदैव समाज में रहने वाले प्रबुद्ध एवं सक्रिय जनों की भागीदारी की अपेक्षा रखता है तथा भारत विश्वगुरु बने इस पावन विचार को लेकर चलायमान रहता है। सभी भारतवासियों से यही आग्रह है की इस पवित्र अश्वमेध रूपी अध्ययन केंद्र से जुड़कर भारत को विश्वगुरु बनाने में हेतु अपनी महत्वपूर्ण योगदान दें।

मूल्य : ₹ 100/-

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

कार्यालय :-

ए -1 / 7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल, चाणक्य प्लेस,
पंखा रोड, नई दिल्ली -110059
ईमेल :- ipss..ipak@gmail.com
सचल दूरभाष :- 9811149925, 9868084938